॥ श्रीः ॥

गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला

१०

महाकविकालिदासकृतं

कुमारसम्भव-महाकाव्यम्

कोलाचलमल्लिनाथसूरिकृता 'सञ्जीविनी' सहितं

हिन्दीटीकोपेतश्च

४

स्वाध्यायान्मा प्रमदः CHAUKHAMBHA ORIENTALIA VARANASI

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA DELHI ९०

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्यविद्या तथा दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक एवं वितरक

वाराणसी दिल्ली

॥ श्रीः ॥

गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला
१०

महाकविकालिदासप्रणीतं

कुमारसम्भवम्

मल्लिनाथ विरचित 'संजीविनी' तथा 'बकुला'
हिन्दीव्याख्या-सहित

(चतुर्थ सर्ग)

सम्पादक-व्याख्याकार
कन्हैयालाल जोशी
एम० ए० वेदालंकार

Bhawan's Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya Bharatiya Vidya
D 608

चौखम्भा ओरियन्टालिया
प्राच्यविद्या तथा दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक एवं वितरक
वाराणसी दिल्ली

प्रकाशक

चौखम्भा ओरियन्टालिया

पो० आ० चौखम्भा, पो० बाक्स नं० ३२

गोकुल भवन, के. ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी–२२१००१ (भारत)

टेलीफोन : ६३३५४ टेलीग्राम : गोकुलोत्सव

शाखा—बंगलो रोड, ९ यू० बी० जवाहर नगर

दिल्ली–११०००७ फोन : २२१६१७

© चौखम्भा ओरियन्टालिया

अष्टम संस्करण

मूल्य · ६)

प्रबन्ध प्रदीप

लेखक

हंसराज अग्रवाल

मूल्य रु० ८–००

Bhawani's

608

मुद्रक—श्रीगोकुल मुद्रणालय, वाराणसी–२२१००१

GOKULDAS SANSKRIT SERIES
NO. 10

KUMĀRSAMBHAVAṀ

OF

MAHĀKAVI KĀLIDĀSA

With
'Sanjivini' and 'Bakulā' Hindi Commentary

By

KANHAIYA LAL JOSHI
M. A. Vedalankar

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA
A House of Oriental and Antiquarian Books
VARANASI DELHI

Publisher :

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA
P. O. Chaukhambha, Post Box No. 32
Gokul Bhawan, K. 37/109, Gopal Mandir Lane
VARANASI-221001 (India)
Telephone : 63354 Telegram : Gokulotsav

Branch—Bungalow Road 9 U. B. Jawahar Nagar
DELHI-110007 Phone : 221617

© *Chaukhambha Orientalia*

8th Edition

Rs. 6/-

नैषधचरितमहाकाव्यम्

'नारायणी' संस्कृत-'प्रकाश' हिन्दी व्याख्या

व्याख्याकार

वायुनन्दन पाण्डेय तथा कपिलदेव गिरि

द्वि० तृ० सर्ग प्रति सर्ग ४-००

भूमिका

कालिदास भारतीय साहित्य एवं संस्कृत की सर्वश्रेष्ठ विभूति हैं। महर्षि अरविन्द का कथन है कि 'वाल्मीकि, व्यास तथा कालिदास प्राचीन भारतीय इतिहास की अन्तरात्मा के प्रतिनिधि हैं और सब कुछ नष्ट हो जाने के बाद भी इनकी कृतियों में हमारी संस्कृति के प्राण तत्त्व सुरक्षित रहेंगे।' वस्तुतः भारतीय संस्कृति ने जिन मूल्यों को अपनी दीर्घकाल की साधना तथा अनुभव के आलोक में प्रतिष्ठित किया, उनकी मंजुल अभिव्यक्ति 'कवि-कुल-गुरु' के काव्यों में सम्पन्न हुई है।

महाकवि कालिदास की लोकप्रियता इसी तथ्य से अभिव्यंजित हो जाती है कि साहित्य-रसिकों ने उन्हें ऐसी अनेक उपाधियों से विभूषित कर दिया, जो आज तक विश्व में किसी अन्य कवि को प्राप्त न हो सकी। उन्हें किसी ने 'कविता-कामिनी-विलास' कहा, तो किसी ने 'कवि-कुल-गुरु' का सम्मान दिया। प्राचीन कवियों ने इन्हें 'दीपशिखा' और कनिष्ठिकाधिष्ठित' कहकर संस्कृत जगत् का सर्वोच्च कवि स्वीकार किया एवं उनके प्रतिस्पर्धी अन्य कवि का प्रत्याख्यान कर दिया।[1] कुछ संस्कृतजनों ने इन्हें 'वाग्देवता का अवतार' माना और सर विलियम जोन्स ने कालिदास को 'भारत का शेक्सपीयर' इस उपाधि से विभूषित किया। वस्तुतः कालिदास भारतीय संस्कृति, कला, सौन्दर्य, प्रेम और प्रकृति के सच्चे उपासक थे। किन्तु भारतीय संस्कृति के आदर्शों एवं मूल्यों को जीवन्त बनाने वाले इस विश्वश्रेष्ठ कवि का जीवनवृत्त आज भी कुतूहल एवं अनुमान का विषय बना हुआ है।

जीवनवृत्त—कवि स्वयं तो अपने विषय में पूर्ण मौन ही हैं अतः इनके जन्म-स्थान, काल एवं जीवन-चरित आदि का अनुमान जनश्रुतियों एवं अन्यान्य भोज-प्रबन्धादि ग्रन्थों के उल्लेख पर आधारित हैं। किवदन्तियों के आधार पर इस कवि शिरोमणि का जीवन अत्यन्त आश्चर्यमय एवं विरोधमूलक घटनाओं से

---

१. पुरा कवीनां गणना प्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासाः।
अद्यापि तत्तुल्य कवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव॥

व्याप्त हैं। ऐसा कहते हैं कि ये प्रारम्भ में वज्रमूर्ख थे किन्तु किसी छल-प्रपंच से इनका विवाह एक विदुषी राजकुमारी से हो गया। बाद में पत्नी की भर्त्सनाओं अथवा अभ्यर्थनाओं से अनुप्रेरित होकर उन्होंने काली की आराधना की और वे भगवती की अनुकम्पा से पूर्ण-प्रतिभासम्पन्न कवि बन कर घर लौटे। तब पत्नी द्वारा पूछे गये 'अस्ति कश्चित् वाग्विशेषः' वाक्य के प्रत्येक पद को लेकर उन्होंने तीन मनोरम काव्य रच डाले—(१) 'अस्त्युत्तरस्यां दिशि' से प्रारम्भ होनेवाला 'कुमारसम्भव'। 'कश्चित् कान्ता' इत्यादि से प्रारम्भ होने वाला 'मेघदूत' तथा वागर्थाविव सम्पृक्तौ' इत्यादि से प्रारम्भ होनेवाला 'रघुवंश'।

इनके निधन के सम्बन्ध में भी एक जनश्रुति प्रचलित है। इसके अनुसार ये लंकानरेश कुमारदास के मित्र थे। वहीं पर एक लालची वेश्या के हाथों इनकी मृत्यु हुई। 'पुरातनप्रबन्धसंग्रह' के आधार पर कुमारसम्भव में स्व-शृङ्गारसुख-वर्णन से कुपित होकर उमा ने कालिदास को स्त्रीव्यसन से मृत्यु होने का शाप दे दिया था। इधर विक्रमादित्य से तिरस्कृत कवि वेश्यासदन में वास करने लगे। तभी राजा ने एक समस्यापूर्ति के लिए प्रचुर धनराशि देने की घोषणा की। कालिदास ने उत्कृष्ट समस्यापूर्ति कर दी। उसी धन के लोभ के कारण वेश्या ने कालिदास को मार दिया।

इस प्रकार और भी बहुत सी किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं, किन्तु इनके आधार पर कवि के असाध्य साहित्यिक देन का मूल्यांकन करना उचित न होगा। कालिदास प्रणीत कृतियों के आधार पर कवि का जो चित्र हमारे सामने व्यक्त होता है उसका इन किंवदन्तियों से घोर विरोध दिखाई पड़ता है। उनकी कृतियों से पता चलता है कि—वे समाज के अत्यन्त प्रिय, श्रद्धेय एवं विद्वत् समाज में आदरणीय थे। वे जाति से ब्राह्मण एवं शिव के उपासक तथा वर्णाश्रम धर्म के पक्षपाती थे। भारत के भूखण्डों का सूक्ष्मवर्णन उनके भ्रमणशील जीवन का परिचायक है।

काल—इनके स्थितिकाल के विषय में भी पर्याप्त मत वैषम्य उपलब्ध होता है। उनकी उपलब्ध रचनाओं में साम्य के आधार पर बहुत कुछ निर्णय लिया जा सकता था, परन्तु उनका काल सम्बन्धी निर्णय अभी भी विवादग्रस्त ही बना हुआ है। इस विषय में विद्वानों ने अनेक कल्पनाएं की हैं। जिनके आधार पर निम्नलिखित तीन मत प्रचलित हैं :—

(१) **कुहरूरवाद**—(The Korur theory) डॉ० हार्नले का मत है कि कुहरूर युद्ध में यशोधर्मन् ने हूणवंश के राजा मिहिरकुल को हराया था, तब इन्हीं यशोधर्मन् ने विक्रमादित्य की उपाधि ग्रहण की और विजय के उपलक्ष्य में विक्रम संवत् प्रारम्भ किया। **फर्गुसन महोदय** (Fergusson) का कहना है कि उज्जयिनी के विक्रमादित्य ने इस संवत् को चलाया और उसे प्राचीन सिद्ध करने के लिए उसकी गणना उन्होंने स्थापना काल से ६०० वर्ष पूर्व अर्थात ५७ ई० पू० से की थी। इसी के आधार पर प्रो० मैक्समूलर (Maxmoller) ने यह कल्पना की कि ये ही कालिदास के विक्रमादित्य हैं। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने भी कालिदास को भारवि के बाद का छठीं शताब्दी का सिद्ध करने का प्रयास किया है। मैक्डोनल का कथन है कि ग्रीक-ज्यौतिष का प्रचार आर्यभट्ट ने ई० पू० पाँचवी शताब्दी में किया था और कालिदास के ग्रंथों में ग्रीक-ज्यौतिष के शब्द पाये जाते हैं अतः छठीं शताब्दी ही कालिदास का समय रहा होगा।

इस मत के विरुद्ध अनेक आपत्तियाँ खड़ी होती हैं। डॉ० हार्नले के मत में प्रथम दोष तो यह है कि यशोधर्मन् को विक्रमादित्य की उपाधि नहीं मिली थी और कालिदास के विक्रमादित्य हूणों के शत्रु नहीं, शकों के शत्रु थे। फर्गुसन के मत में भी यह बात सिद्ध नहीं होती कि विक्रम संवत् ६०० पूर्व ही क्यों चलाया गया ? हाल में प्राप्त मन्दसोर के शिलालेख से पता चलता है कि ई० ६०० से पूर्व भारत में विक्रम संवत् प्रचलित था, जो मालव संवत् के नाम से था। उसकी स्थापना ई० पूर्व प्रथम शतक में विक्रम नाम के मालवगण के नेता ने की थी।

(२) **गुप्तकालीनवाद**—इस के समर्थक डॉ० कीथ हैं। गुप्तकालीन शासन काल भारत के इतिहास में स्वर्णयुग रहा। चन्द्रगुप्त (द्वितीय) ने शकों को परास्तकर 'विक्रमादित्य' की उपाधि ग्रहण की और पहले से चले आ रहे मालव संवत् को ही 'विक्रम संवत्' नाम दिया। इन्हीं के पुत्र कुमार गुप्त थे। कालिदास के कुमारसम्भव में इनके जन्म की घटना की प्रतीति होती है। कालिदास का प्राकृत अश्वघोष और भास के प्राकृत से अर्वाचीन हैं। कालिदास ग्रीक-ज्यौतिष के शब्दों से भी परिचित हैं। उनके ग्रन्थों से पता चलता है कि देश में ब्राह्मण

धर्म का बोलबाला था। अतः कालिदास का काल गुप्तकाल से प्राचीन नहीं माना जा सकता।

इसके अतिरिक्त रघुवंश में वर्णित रघु की दिग्विजय तथा प्रयाग की हरिषेण कृत प्रशस्ति में वर्णित समुद्रगुप्त (चन्द्रगुप्त द्वितीय के पिता) की दिग्विजय में बहुत कुछ साम्य दिखाई पड़ता है। समुद्रगुप्त ने भी अश्वमेघ यज्ञ किया था, मालविकाग्निमित्र में वर्णित अश्वमेघ इसी की ओर संकेत करता है। ऋतु० एवं मेघ० में उज्जयिनी के वैभव का वर्णन गुप्तकाल के वैभव को ही लक्ष्य करता है। कालिदास ने अपनी रचनाओं में गुप् धातु तथा गुप्त शब्द का प्रयोग अधिक किया है, इससे अपने आश्रयदाताओं के प्रति उनकी आस्था प्रकट होती है।

प्रो० मैक्डोनल (Macdonell) का संस्कृत-पुनरुज्जीवनवाद भी कालिदास का गुप्तकालीन होना सिद्ध करता है। मध्यकाल में विदेशी आक्रमण के फलस्वरूप साहित्य कला लुप्तप्राय हो चुकी थी। छठीं शताब्दी में विक्रमादित्य के शासन-काल में संस्कृत का पुनरुत्थान हुआ। कालिदास इसी काल के प्रतिनिधि कवि माने जा सकते हैं।

इस गुप्तकालीन मत के विरुद्ध अनेक आपत्तियाँ खड़ी होती हैं। सर्वप्रथम तो यह कि चन्द्रगुप्त जैसे पराक्रमी राजा ने मालव संवत् को ही विक्रम संवत् के रूप में क्यों चलाया? वे अपना गुप्त संवत् भी चला सकते थे, क्योंकि उनके पितामह चन्द्रगुप्त प्रथम ने स्वयं गुप्त संवत् चलाया था। चन्द्रगुप्त द्वितीय के पौत्र स्कन्दगुप्त के गिरनार के शिलालेखों में भी गुप्त संवत् का ही उल्लेख मिलता है। इस प्रकार यह घटना ऐतिहासिक तथ्यों के विरुद्ध जान पडती है। इतिहास से यह भी ज्ञात होता है कि गुप्तवंशीय किसी भी सम्राट् का नाम विक्रमादित्य नहीं था। चन्द्रगुप्त को यह उपाधि दी गयी थी और उपाधि के लिए आवश्यक है कि पहले उस नाम का महान् व्यक्ति रहा हो अतः मानना पड़ेगा कि कालिदास का आश्रयदाता विक्रमादित्य गुप्तवंशीय नहीं था।

'कुमार' और 'गुप्त' आदि शब्दों का प्रयोग सामान्य अर्थ में ही हुआ है, न कि व्यङ्ग्य अर्थ में। दिग्विजय का वर्णन और अश्वमेध को समुद्रगुप्त ही से क्यों जोड़ा गया? किसी भी सम्राट् के साथ इसका सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। ऐसे अनेक कथानक पुराणों में प्राप्त होते हैं।

मैक्डोनल के अनुसार भी कालिदास को गुप्तकाल का नहीं माना जा सकता। डॉ॰ पीटर्सन (Peterson) तथा डॉ॰ बुहलर (Buhler) का कहना है कि मध्यान्तर काल में भी साहित्यिक रचनाएँ होती रही हैं और यह भी बात है कि पुनरुत्थान काल ई॰ पू॰ छठीं शताब्दी न मानकर ई॰ पू॰ प्रथम शताब्दी ही मानना होगा क्योंकि यही नव निर्माण का युग था।

(३) प्रथम शताब्दी (ई॰ पू॰) का मत—अधिकांश भारतीय विद्वान् इसी मत के समर्थक हैं। यह सर्वसम्मत सिद्ध है कि कवि का सम्बन्ध विक्रमादित्य से ही रहा है। गुणाढ्य की बृहत्कथा के रूपान्तर 'कथासरित्सागर' में जिस विक्रमादित्य का उल्लेख मिलता है, वे उज्जयिनी के राजा थे और सर्वप्रथम उन्होंने ही शकों को परास्त करके ५७ ई॰ पू॰ में अपना विक्रम संवत् चलाया था। उन्होंने ही महाकाल शिव का मन्दिर बनवाया और वर्णाश्रम धर्म का जीर्णोद्धार किया। आधुनिकतम ऐतिहासिक खोज के आधार पर यह सिद्ध हो गया है कि महेन्द्रादित्य के पुत्र परमारवंशीय विक्रमादित्य थे जिनकी राजधानी उज्जयिनी थी। इसके विपरीत गुप्तवंशीय राजा वैष्णव थे और उनकी राजधानी पाटलीपुत्र थी। कालिदास ने अपने विक्रमोर्वशीय नाटक में अपने आश्रय दाता के पिता के नाम का सर्वत्र संकेत किया है।[1] कथासरित्सागर में वर्णित महेन्द्रादित्य और विक्रमादित्य के वर्णन से रघुवंश के दिलीप और पुत्र रघु का वर्णन अत्यधिक साम्य रखता है। ये सभी सूर्यवंशी ही थे। मेघदूत वत्सराज उदयन का संकेत भी कवि को प्रथम शताब्दी ई॰ पू॰ का सिद्ध करता है।[2]

इसके अतिरिक्त आप्टे महोदय ने शाकुन्तल के छठें अंक से दो प्रमाण उद्धृत किये हैं और उसके आधार पर कालिदास को प्रथम शताब्दी का सिद्ध किया है। (१) श्रेष्ठी धनदत्त की मृत्यु के बाद उसकी सम्पत्ति उसकी विधवा को नहीं मिली और वह राज्य के अधिकार में चली गयी। यह प्रथा ई॰ पू॰ की ही है। (२) अँगूठी चुराने के अपराध में मृत्युदण्ड की आशंका होना आदि भी बृहस्पति और याज्ञवल्क्य स्मृतियों से पूर्व का विधान है। इससे सिद्ध होता है कि कालि-

---

१. दिष्ट्या महेन्द्रोपकारपर्याप्तेन विक्रममहिम्ना वर्धते भवान्।
इदानीं महेन्द्रसंकीर्तनेन स्मारितः समयो मम हृदयमायासयति।

२. प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्....(पू॰ मे॰ ३०)।

दास का स्थितिकाल ई० पू० का ही है। उनके आश्रयदाता उज्जयिनी के प्रथम विक्रमादित्य ही हैं। चीनी यात्री फाहियान ने अपनी डायरी में चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन-व्यवस्था के विषय में लिखा है कि—'राज्य में प्राणदण्ड का विधान नहीं था, अधिकतर जुर्माना ही होता था'। कालिदास के काव्य में भाषा का जो सहज प्रवाह हमें देखने को मिलता है वह मध्ययुगीन दण्डी, बाण, भवभूति आदि के समान जटिल, समासबहुल नहीं है। इन सभी कारणों से कालिदास का स्थितिकाल प्रथम शताब्दी (ई० पू०) ही सिद्ध होता है।

निष्कर्ष—कवि का स्थितिकाल भिन्न-भिन्न विद्वानों द्वारा भिन्न-भिन्न नर्धारित किया गया है। यद्यपि हमारे यहाँ ऐतिहासिक ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं, परन्तु उनमें से यथार्थ ऐतिहासिक सामग्री का निकालना कष्टसाध्य है क्योंकि उनमें अनेक विचित्र घटनाओं, कथा-प्रसंगों एवं अतिशयोक्तिपूर्ण वृत्तान्तों का आधिक्य है। दूसरी कठिनाई यह आ जाती है कि प्राचीन कवियों ने अपने विषय में कुछ भी उल्लेख स्वरचित ग्रन्थों में नहीं किया। उनकी मृत्यु के बाद भी ऐसी कोई प्रथा नहीं रही कि जिससे उनका जीवन चरित किसी प्रकार हमारे सामने आ सके। हम कुछ अन्य प्रमाणों के आधार पर देखें तो कालिदास का काल लगभग ई० पू० प्रथम शतक के आसपास का अधिक उचित जान पड़ता है। ६२० ई० में वर्तमान बाण के हर्षचरित में कालिदास की प्रशंसा की गयी है[1] तथा एहोल (Aihole) के शिलालेख (६३४ ई०) में भी इनका उल्लेख मिलता है। मालविकाग्निमित्र नाटक का नायक पुष्यमित्र का पुत्र अग्निमित्र है जो शुंगवंश का प्रवर्तक है। विद्वानों ने इसका समय ईसा से लगभग १५० वर्ष पूर्व स्वीकार किया है। कालिदास का काल इससे पूर्व होना स्वाभाविक है। फिर भी अनेक प्रश्नों के बीच में उलझा हुआ कवि का स्थितिकाल विश्वास के साथ निर्धारित नहीं किया जा सकता।

कृतियाँ—

महाकाव्य—(१) कुमारसम्भव, (२) रघुवंश। **खण्डकाव्य**—(१)

---

१. निर्गतासु नवा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥

ऋतुसंहार, (२) मेघदूत । **नाटक**—(१) मालविकाग्निमित्र, (२) विक्रमोर्वशीय, (३) अभिज्ञान शाकुन्तल ।

यद्यपि कालिदास के नाम से अन्य भी अनेक ग्रन्थ रचित माने जाते हैं। परन्तु सर्वसम्मति से यही सात ग्रन्थ कालिदास-प्रणीत माने गये हैं। इसका कारण है कि इन रचनाओं में प्रायः भाषा, शैली, भाव एवं सूक्ष्म विचारों का पर्याप्त साम्य दिखाई पड़ता है। अन्य ग्रन्थ कालिदास नाम के किसी अन्य कवि के हैं इस प्रकार सम्भावना की जाती है। अतः कालिदास की प्रमुख कृतियों के विषय में ये सात ही विद्वत् समाज में मान्य हैं।

कालिदास का काव्य-सौष्ठव— विश्व के किसी भी साहित्य के क्षेत्र में अध्ययन करने वाला ऐसा कोई नहीं हो सकता, जो कालिदास की कला से अपरिचित हो। कवि साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में अपना पूर्ण अधिकार रखता है। उनके ग्रन्थ रस, भाव, भाषा एवं शैली की दृष्टि से चरम सीमा को स्पर्श करते हैं। यही कारण है कि कालिदास 'कविकुलभूषण', 'कविकुलशिरोमणि' आदि उपाधियों से अलंकृत हैं।

कालिदास शृङ्गार रस के सबसे बड़े कवि हैं। जीवन के सम्पूर्ण क्षेत्र में शृङ्गार का अपना विशिष्ट महत्त्व है अतएव उसे 'रसराज' भी कहा जाता है। कालिदास ने शृङ्गार के दोनों पक्षों का—संभोग और विप्रलम्भ का वेजोड़ वर्णन किया है। तदनुकूल वातावरण को निर्मित करने में वे सिद्धहस्त हैं। अभिज्ञान शाकुन्तल की प्रकृतिकन्या शकुन्तला का असाधारण सौन्दर्य वर्णन एवं प्रणय-चित्रण विश्व-साहित्य में दुष्प्राप्य है। विप्रलम्भ शृङ्गार का उत्कृष्टतम उदाहरण कवि का मेघदूत काव्य है जिसे पढ़कर पाठक मन्त्रमुग्ध हो जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यक्ष की मानस-वेदना कवि की आत्मगत वेदना ही है।

शृङ्गार के अतिरिक्त कवि ने हास्य एवं करुण रस के भी मर्मस्पर्शी चित्र उपस्थित किये हैं। रघुवंश का अजविलाप और कुमारसम्भव के चतुर्थ सर्ग में रति-विलाप करुण रस के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। कवि के नाटकीय पात्र जैसे विदूषक हास्य रस का नेता है। उनका हास्य सभ्य समाज के व्यावहारिक पक्ष को लेकर ही चलता है। कुमारसम्भव के पञ्चम सर्ग में पार्वती के आश्रम में आये हुए ब्रह्मचारी द्वारा शिवजी की निन्दा के प्रसङ्ग में एक पद्य द्रष्टव्य है—

इयञ्च तेऽन्या पुरतो बिडम्बना यदूढया वारणराजहार्यया ।
विलोक्य वृद्धोक्षमधिष्ठितं त्वया महाजनः स्मेरमुखो भविष्यति । (कु० ५।७०)

रति के विलाप का कितना हृदयस्पर्शी चित्र कवि ने उपस्थित किया है। स्त्रियाँ पतिमार्ग का सदा अनुसरण करती हैं। चन्द्र के अस्त होते ही उसकी ज्योत्स्ना भी ओझल हो जाती है और मेघ के विलीन होने पर उसकी सहगामिनी विद्युत् भी लुप्त हो जाती है। तो फिर रति अपने पति के अभाव में कैसे जीवित रह सकती है ?

शशिना सह याति कौमुदी सह मेघेन तडित्प्रलीयते ।
प्रमदाः पतिवर्त्मगा इति प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि ।(कु०४।३३)

प्रकृति की जो वस्तुएँ पतिसंयोग के समय जितनी अधिक प्रिय और सुखद होती हैं, उतनी ही वे पतिवियोग के समय कष्टदायी होती हैं। वसन्त को देखते ही रति का हृदय फूट-फूट कर रोने लगता है। कवि ने उस दुःख को कितने मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है—

तमवेक्ष्य रुरोद सा भृशं स्तनसम्बाधमुरो जघान च ।
स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते । (कु० ४।२६)

कवि की मनोवैज्ञानिक शक्ति अतिप्रबल है। वह मनुष्य के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को सरल ढंग से प्रस्तुत कर देते हैं। अवस्था एवं पात्र के अनुकूल भाषा का प्रयोग करते हुए व्यञ्जना के माध्यम से मनोभावों का चित्र उपस्थित करते हैं। इसके अतिरिक्त वस्तु-व्यञ्जना के उदाहरण इनके काव्य में पाये जाते हैं। एक सुन्दर उदाहरण द्रष्टव्य है —

एवंवादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी ।
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती । (कु० ६।८४)

अर्थात् जब देवर्षि ने हिमालय से पार्वती के विवाह का प्रस्ताव रखा उस समय पास में खड़ी उमा नीचे मुँह करके हाथ में रखे लीलाकमल के पत्तों को गिनने लगी।

इतने लघुपदों में इतना स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत करना कालिदास की ही कला है। इसे पढ़ते ही सामने दृश्य उपस्थित हो जाता है। हमें पार्वती के मनोभावों की यथार्थ अनुभूति होने लगती है। उसी प्रकार कालिदास जगत् के अन्तः-

स्वरूप को प्रकट करने में जितने सिद्धहस्त हैं, उतने ही उसके बाह्यस्वरूप के वर्णन में भी कुशल हैं। उनकी दृष्टि अत्यन्त सूक्ष्म है। वे वर्ण्य विषय की सूक्ष्म से सूक्ष्म विशेषता को भी बड़ी निपुणता के साथ सहज ढंग से प्रस्तुत कर देते हैं। कुमारसम्भव के पञ्चम सर्ग में पार्वती के सिर से ढलने वाली वर्षा के प्रथम बूंद की मनोरम स्थिति का सूक्ष्म एवं मनोरम वर्णन देखिये—

स्थिता क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः।
वलीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे चिरेण नाभिं प्रथमोदबिन्दवः। (कु॰५।२४)

यह वर्णन कवि की सूक्ष्म दृष्टि का उत्तम प्रतीक है। इसमें जल की बूंद की अवस्था का परिवर्तन भी सहज दिखाई पड़ता है।

शैली—कालिदास वैदर्भी रीति के कवि हैं। रीति से तात्पर्य काव्य की पद-रचना से है। वैदर्भी रीति वह है जिसमें वाक्य समासबहुल न होकर लघु और सरल होते हैं। अतः इनकी कविता में प्रसाद गुण पाया जाता है। प्रसाद गुण के सम्बन्ध में लक्षण ग्रन्थों में लिखा गया है—

चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः।
स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च॥ (सा॰ द॰)

कालिदास की शैली ठीक ऐसी है। वे सरल और स्वाभाविक ढंग से अपने वर्ण्य विषय का सजीव और मनोरम चित्र उपस्थित करते हैं, जो सहृदय के चित्त में शीघ्र ही व्याप्त हो जाता है। वे किसी भी बात को घुमा फिरा करके न कहकर सीधे ढंग से व्यक्त करना अधिक पसन्द करते हैं।

कवि को छन्दःशास्त्र का अपूर्व ज्ञान है। वह भावों के अनुकूल ही छन्द को अपनी कविता का माध्यम बनाते हैं। प्रायः एक सर्ग में वे एक ही छन्द का प्रयोग करते हैं। सर्ग के अन्त में छन्द-परिवर्तन करते हैं। सम्पूर्ण मेघदूत मन्दाक्राता में ही लिखा है।

उपमा कालिदासस्य—कालिदास ने अपने काव्यों में शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनों का ही प्रयोग किया है, तथापि विशेष कर अर्थालंकारों का प्रयोग अधिक मिलता है। कालिदास अपनी उपमा के लिए संस्कृत-जगत् में विख्यात हैं—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

यह बात नहीं है कि कालिदास ने अन्य अलङ्कारों का प्रयोग न किया हो। इनके ग्रन्थों में प्रायः सभी अलङ्कारों का प्रयोग हमें मिलता है। परन्तु अन्य सभी कवियों की अपेक्षा कालिदास की विशेषता उपमा में ही है। कालिदास की उपमा अत्यन्त रोचक और स्वाभाविक है, जो किसी अन्य कवि के काव्य में सर्वथा दुर्लभ जान पड़ती है। उपमा के सबसे अधिक उदाहरण हमें रघुवंश महाकाव्य में मिलते हैं। ग्रन्थ का प्रारम्भ ही एक उत्कृष्ट कोटि की उपमा के साथ हुआ है। अनुष्टुप् जैसे लघुकलेवर छन्दों में इस प्रकार के उदाहरण अप्राप्य हैं—

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥

आगे चलकर ऐसी अनेक उपमाओं का वर्णन हमें मिलता है, जिसमें कवि की सर्वोत्कृष्ट कल्पना एवं चमत्कार-चातुर्य का परिचय मिलता है। रघुवंश का प्रथम और द्वितीय सम्पूर्ण सर्ग उपमाओं की नूतन कल्पनाओं से ओतप्रोत है। आगे भी हमें बड़े सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। उपमा की एक सुन्दर झलक देखिए—

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः ॥ (रघु० ३।३७)

यहाँ कवि ने दीपशिखा की उपमा द्वारा राजाओं की उदासीनता को अभिव्यञ्जित किया है। कुमारसम्भव पञ्चम सर्ग में सहसा शिव को देखकर पार्वती के मन में जो प्रतिक्रियाएँ हुइं, उनका वर्णन कवि ने बहुत ही सुन्दर उपमा देकर प्रस्तुत किया है।

तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टिर्निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती।
मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ ॥
(कु० ५।८५)

पार्वती के सामने जब शिव ने अपना असली स्वरूप धारण करके उसका हाथ पकड़ लिया, उस समय वह मार्ग में पर्वत के अवरोध से व्याकुल नदी के समान न तो आगे की ओर ही बढ़ सकी और न तो वहाँ रुक ही सकी।

उपमा के अतिरिक्त कवि ने उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त, व्यक्तिरेक आदि अलङ्कारों का भी समुचित प्रयोग किया है।

प्रकृतिचित्रण—कालिदास का प्रकृति-वर्णन अनूठा है। वे वाह्य एवं अन्तर्जगत् के साक्षीरूप में प्रकृति को मानते हैं। उसको प्रकट करने के लिये वे प्रकृति को पृष्ठभूमि बनाते हैं। वे अन्तर्जगत् के सौन्दर्य को बहिर्जगत् में देखते हुए दोनों में तादात्म्य स्थापित करना चाहते हैं। वे प्रकृति के प्रेमी और सच्चे उपासक थे, अतः उन्होंने उसके कोमल स्वरूप का ही चित्रण किया है, उसके उत्कट स्वरूप का नहीं। कवि ने प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन दोनों रूपों को चित्रित किया है। कुमारसम्भव प्रथम सर्ग में हिमालय का वर्णन आलम्बन रूप में है तथा रघुवंश द्वितीय सर्ग में भी प्रकृति का आलम्बन रूप ही दिखाई पड़ता है। कुमारसम्भव का प्रारम्भ ही हिमालय के वर्णन से हुआ है। उस स्वाभाविक चित्रण को कवि ने एक सुन्दर उत्प्रेक्षा से संयोजित भी किया है—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नागाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥ (कु० १।१)

कवि प्रकृति के साथ जीवन का तादात्म्य स्थापित करता है। उनकी यह एकता भारतीय दर्शन के एकात्मवाद की पृष्ठभूमि पर आधारित है। शकुन्तला केवल वन में वास ही नहीं करती, अपितु वहाँ की प्रकृति की सब वस्तुओं से अपना गहरा अनुराग भी रखती है। इतना ही नहीं, जब वह पतिगृह को जाने लगती है तो प्रकृति का स्तब्ध वातावरण उसको दिखाई देता-सा प्रतीत होता है। अपने द्वारा सींचे गये पौधों से वह दूर नहीं जाना चाहती। उसकी बिदाई के समय कोई वृक्ष उसे क्षौम देने लगता है, तो कोई लाक्षारस। उसके वियोग में लताएँ आँसू बहाने लगती हैं, तो मृगियाँ दर्भग्रास को उगल देती हैं।

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतम्।
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभो लाक्षारसः केनचित्॥
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितैः।
वस्त्राण्याभरणानि नः किसलयच्छायाप्रतिस्पर्द्धिभिः॥

(शा० ४।७)

उसी प्रकृति की गोद में शकुन्तला और दुष्यन्त के सुखद प्रणय का भी जन्म हुआ है। मेघदूत का समस्त प्रकृति-चित्रण नायक और नायिका की कोमल भावनाओं का निदर्शन है। धूम, ज्योति और सलिल के सन्निपात मेघ को

दूत बनाकर उनमें चेतन क्रियाओं का व्यवहार करते हुए कवि ने मानव और प्रकृति के घनिष्ठ सम्बन्ध को अभिव्यक्त किया है। कवि का सूक्ष्म चिन्तन प्रकृति का सजीव चित्र उपस्थित कर देता है। प्रिया से वियुक्त यक्ष ने जिस मेघ को देखा उसकी कल्पना कालिदास से भिन्न कोई कवि कर सकता है ?

आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं।
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श ॥ (पू० मे० २)

महर्षि कण्व का आश्रम मानों कवि का स्वयं का आश्रम था। पार्वती के तपोवन में मानों वह स्वयं ही विचरण कर चुका था। हिमालय का वर्णन वह उस पर स्थित होकर ही कर रहा था। उसके हिम, धातुमत्ता आदि स्थूल पदार्थों के अतिरिक्त सरल वृक्षों के रस की सुगन्ध को ग्रहण कर रहा था। हिमालय पर हाथी अपनी खुजली मिटाने के लिए सरल वृक्षों पर अपना शरीर रगड़ते हैं। उससे रस टपकता है और समस्त शिखर सुगन्धित हो उठते हैं —

कपोलकण्डूः करिभिर्विनेतुं निघट्टितानां सरलद्रुमाणाम्।
यत्र स्रुतक्षीरतया प्रसूतः सानूनि गन्धः सुरभि करोतिः ॥ (कु० १।९)

इन सब के आधार पर हम कह सकते हैं कि कवि ने अपने बाह्य चक्षुओं से भले ही प्रकृति को पूर्णतया न देखा हो परन्तु अपने अकृत्रिम अन्तःचक्षुओं से अवश्य ही देख लिया था। कालिदास की कृतियाँ भारत की प्रकृति-रमणी की क्रीडास्थली हैं।

कुमारसम्भव

यह सत्रह सर्गों में विभक्त एक पूर्ण महाकाव्य है। साहित्य-दर्पण में विश्वनाथ कविराज ने महाकाव्य के निम्न लक्षण प्रस्तुत किये हैं—

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ॥
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।
शृङ्गारवीरशान्तानामेकांगी रस इष्यते ॥
अङ्गानि सर्वेऽपि रसा सर्वे नाटकसंधयः।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ॥

चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ॥
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम् ।
एकवृत्तमयः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः ॥
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह ।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ॥
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ।
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्तवासराः ॥
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः ।
सम्भोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः ॥
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः ।
वर्णनीया यथायोग्यं सांगोपांगा अमी इह ॥
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतस्य वा ।
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु ॥

उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर कुमारसम्भव एक महाकाव्य सिद्ध होता है। इसमें सत्रह सर्ग पाये जाते हैं। परन्तु डॉ० कीथ आदि विद्वानों ने भाषा, भाव एवं अर्थसौन्दर्य की दृष्टि से मूलतः कुमारसम्भव में केवल आठ सर्ग कालिदास-रचित स्वीकार किये हैं। उसमें भी कुछ विद्वान् अष्टम सर्ग को कालिदास रचित नहीं मानते। इसके लिए सबसे बड़ा प्रमाण यही उद्धृत किया जाता है कि प्रारम्भ के आठ सर्गों पर ही मल्लिनाथ कृत संजीवनी टीका उपलब्ध होती है। डॉ० जैकोबी का मत है कि नवम सर्ग से सत्रहवें सर्ग तक की रचना महाराष्ट्र के किसी कवि ने की है। यह कहना कठिन है कि कालिदास द्वारा यह ग्रन्थ पूरा क्यों नहीं हुआ ? सम्भव है कभी इसकी एक ही खण्डित प्रति रह गयी हो तब किसी विद्वान् ने आगे का ग्रन्थ स्वयं पूरा किया हो। दूसरी कल्पना यह भी की जाती है कि सम्भवतः अष्टम सर्ग में वर्णित शिव-पार्वती के सम्भोग वर्णन से उन पर समालोचकों द्वारा आक्षेप लगाये गये हों और उन्होंने आगे ग्रन्थ रचना बन्द कर दी हो। इस प्रकार इस विषय में अनेक कल्पनाएँ प्रस्तुत हैं जिन पर यथार्थ दृष्टि रखना असम्भव है।

इस महाकाव्य में शृङ्गार रस अङ्गीरस के रूप में अवतरित हुआ है। ग्रन्थ का नामकरण 'कुमार + सम्भव = कर्तिकेय की जन्म घटना पर आधारित है। कवि ने कुमारसम्भव का कथानक कहाँ से ग्रहण किया इस विषय में मतभेद है। शिवपुराण तथा स्कन्दपुराण में कार्तिकेय की कथा का वर्णन मिलता है। कवि ने इसमें बड़ी सूझ-बूझ के साथ अनेक घटनाओं एवं प्रसंगों का गुम्फन करके विषयवस्तु को अत्यन्त उत्कृष्ट बना दिया है। पार्वती के विवाह से पूर्व उसके समक्ष मदन का दहन कवि की नूतन कल्पना है। उसका चरम लक्ष्य यही है कि अनेक विपत्तियों में भी अविचल रहने वाला प्रेम ही सत्य एवं चिरस्थायी होता है। इसी अनुभव की पुष्टि उन्होंने अपने 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक में की है।

कुमारम्भव की कथा

इस काव्य का कथानक मुख्यतः कार्तिकेय के जन्मवृत्तान्त पर आधारित है। एक बार ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त करके ताड़कासुर ने देवों को बहुत सताया। तब देवों द्वारा ब्रह्मा की स्तुति की गयी। उससे प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उन्हें बताया कि शिव और पार्वती का विवाह सम्पन्न होने से उनसे उत्पन्न पुत्र ही ताड़कासुर की मृत्यु का कारण बनेगा। इसी कथा का विस्तार कवि ने भिन्न-भिन्न सर्गों में किया है।

प्रथम सर्ग—प्रथम सर्ग का प्रारम्भ हिमालय के अनुपम सौन्दर्य-वर्णन से कवि ने किया है। उसके बाद पार्वती के जन्म, शैशव तथा यौवन का मनोहर वर्णन है। पिता हिमालय के समीप बैठी पार्वती को देखकर नारद जी भविष्य-वाणी करते हैं कि उसका विवाह शिवजी के साथ होगा। उस समय महादेव हिमालय पर तप कर रहे थे। पार्वती उन्हीं की सेवा में रत हो जाती है।

द्वितीय सर्ग—ताड़कासुर से संत्रस्त होकर देवता लोग ब्रह्मा की शरण पहुँचते हैं। उससे प्रसन्न होकर ताडकासुर के वध का उपाय बताते हैं कि शिव और पार्वती का प्रणय होने पर उससे उत्पन्न पुत्र द्वारा ही उसकी मृत्यु सम्भव है।

तृतीय सर्ग—तब इन्द्र ने अपनी सभा में कामदेव को आमन्त्रित किया और शिव के हृदय में पार्वती के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने के लिये कहा। मदन

अपनी पत्नी रति तथा वसन्त को लेकर हिमालय पर गया। वहाँ सर्वत्र वसन्त ने अपना साम्राज्य स्थापित कर दिया। जब पार्वती को शिव के चरणों में पुष्पाञ्जलि अर्पित करने का अवसर प्राप्त हुआ तभी मदन ने अपना सम्मोहन धनुष उन पर छोड़ दिया। शिव की चित्तवृत्ति कुछ क्षण के लिये चंचल हो उठी परन्तु तभी उन्होंने कारण का पता लगाकर कोपानल से मदन को भस्म कर डाला।

चतुर्थ सर्ग—पति की इस दुर्दशा को देखकर रति मूर्छित होकर गिर पड़ी और उसके वियोग में अत्यन्त विलाप करने लगी। उसने देह-त्याग का निश्चय कर लिया परन्तु तभी आकाशवाणी होती है कि पार्वती के पाणिग्रहण के समय शिव पुनः मदन को प्राणदान करेंगे।

पञ्चम सर्ग—इस प्रकार अपने समक्ष मदन-दहन को देखकर पार्वती की सब आशाएँ धूल में मिल गई। उसने शिव को पाने के लिये कठोर तप प्रारम्भ कर दिया। उससे प्रसन्न होकर शिव ब्रह्मचारी का वेश धारण करके उसके समीप आते हैं और पार्वती के सामने शिव की अनेक प्रकार से निन्दा करने लगते हैं। तब पार्वती उससे रुष्ट होकर वहाँ से जाने लगती है। उसी समय शिव अपने वास्तविक रूप को प्रकट करके उसे पकड़ लेते हैं। पार्वती लज्जा से अवनतमुख हो जाती है और अपनी तपःसिद्धि से संतुष्ट होकर सब कष्टों को भुला देती है।

षष्ठ सर्ग—इसके अनन्तर शिवजी ने पार्वती की मँगनी के लिये अङ्गिरा आदि सप्तर्षियों को भेजा। हिमालय ने इन प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

सप्तम सर्ग—इसमें शिव और पार्वती के विवाहोत्सव का वर्णन किया गया है। कवि ने पार्वती की वेषभूषा एवं सुन्दरता, सखियों का परिहास एवं पुरवासियों की उत्सुकता का रमणीय चित्र खींचा है।

अष्टम सर्ग—इसमें शिव और पार्वती के सम्भोग का वर्णन है। शिवजी ने इसमें सैकड़ों वर्ष बिता दिये हैं।

नवम सर्ग—तब इन्द्रादि देवों ने अग्नि को कबूतर बनाकर शिव-पार्वती के विलास-स्थल पर भेजा। शिव ने अपना वीर्य उसमें स्थापित किया परन्तु उसे सहन न करने के कारण इन्द्र के आदेश से उसे गंगा में फेंक दिया।

दशम सर्ग—गङ्गा भी उस वीर्य को सह न सकी और उसने वहाँ स्नान करने आयी हुई छः कृत्तिकाओं के शरीर में डाल दिया। वे भी उस भार को न सहन कर सकीं और उस वीर्य को वेतस वन में फेंक दिया।

एकादश सर्ग—उसी समय शिव-पार्वती विमान मार्ग से जा रहे थे, तभी उनकी दृष्टि उस बालक पर पड़ी और उसे अपने वीर्य से उत्पन्न हुआ जानकर घर ले गये। वह बालक केवल छः दिनों में ही बड़ा होकर सम्पूर्ण शास्त्रों में निपुण हो गया।

द्वादश सर्ग—इन्द्रादि देवों की प्रार्थना से शिव ने उसे देवसेना का सेनापति बनाकर स्वर्ग भेज दिया।

त्रयोदश सर्ग से सप्तदश सर्ग—कार्तिकेय को आगे करके देवों ने ताड़कासुर पर आक्रमण कर दिया। ताड़कासुर और कार्तिकेय के मध्य भयानक युद्ध छिड़ गया। ताड़कासुर को अनेक प्राकृतिक अपशुकन दिखाई देने लगे। अन्त में कुमार के हाथों उसका वध हो गया। स्वर्ग से पुष्पवृष्टि होने लगी। सभी देव प्रसन्न हो उठे और इन्द्र की चिन्ता समाप्त हो गयी।

●

चतुर्थ सर्ग का कथा-सारांश

चतुर्थ सर्ग में भगवान् शिव के तृतीय नेत्र से निकली क्रोध की अग्नि द्वारा कामदेव के भस्म हो जाने पर उसकी पत्नी रति के हृदयविदारक विलाप का वर्णन है।

शिवजी के अन्तर्धान होने पर तथा पार्वती के चले जाने के बाद मूर्च्छित होकर निश्चेष्ट पड़ी हुई कामपत्नी रति को नये वैधव्य के असह्य दुःख का अनुभव कराने के लिए दैव ने पुनः जगा दिया अर्थात् उसकी मूर्छा को दूर कर दिया। दैववश मूर्च्छा दूर होने पर रति ने अपने पति कामदेव को देखने की इच्छा से नेत्रों को खोलकर देखा, परन्तु उन आँखों के लिए प्रिय का दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है इस बात को वह न जान सकी। कुछ होश में आने पर रति कामदेव के शरीर-संस्थान को सामने पड़ा हुआ देखकर हे प्राणनाथ ! तुम जीवित हो ? इस प्रकार कहती हुई उठकर शीघ्र उसके समीप पहुँची, परन्तु वहाँ उसने पुरुष की आकृति रूप भस्म को ही देखा। तब अपने पति की मृत्यु का निश्चय हो जाने पर रति अत्यन्त व्याकुल होकर भूमि पर लोटने लगी जिससे उसके स्तन धूल-धूसरित हो गए एवं केशपाश (माथे का जूड़ा) खुल गए। उस समय वह सम्पूर्ण वन-स्थली को अपने समान ही दुःखित करती हुई-सी करुण विलाप करने लगी और बोली—हे प्रिय ! आपका सौन्दर्यपूर्ण शरीर इस समय ऐसी दुर्दशा को प्राप्त हुआ है और मैं आपकी अर्द्धाङ्गिनी फिर भी जीवित हूँ, इससे मालूम होता है कि स्त्रियाँ अति कठोर होती हैं तथा उनका हृदय अत्यन्त कठोर होता है। आप मेरे प्रेम को ठुकरा कर मुझ (रति) को छोड़कर कहाँ चले गए ? हे प्रिय ! तुम अपना मुखड़ा क्यों नहीं दिखाते ? हे प्रियवर, आप कहते थे कि 'तुम मेरे हृदय में बसती हो' पर मैं उसे झूठा ही समझती हूँ, वह तो मुझे खुश करने के लिए ही वाग्जाल था अन्यथा आपके नष्ट हो जाने पर मैं कैसे (पूर्ण शरीरवाली) रह जाती ?

हे प्राणनाथ ! आपके मार्ग का मैं शीघ्र ही अनुगमन करूँगी। दुर्दैव के द्वारा मैं ठग ली गई हूँ। हे प्रिय ! गाढ़े अन्धकार में रात्रि के समय में अभिसारिकाओं को आपके बिना कौन सहायक होगा ? अर्थात् कोई नहीं। कामिनी स्त्रियों को

मदिरापान का नशा आपके बिना फीका लगेगा यानी उपहास का पात्र बनकर रह जायगा। आप जैसे मित्र के न रहने पर यह बेचारा चन्द्रमा अपने दुर्बल शरीर को कठिनता से पुष्ट करेगा। हे कुसुमायुध! आपके बिना यह आम की मंजरी किसका बाण बनेगी? हे पञ्चशर! ये भौंरो की पंक्तियाँ आपके बिना रोती हुई मेरा ही अनुमोदन कर रही हैं। हे काम! अपने अति सुन्दर रूप को धारण करके कामिनी और कामुक के परस्पर मिलन रूप कार्य में सहयोग देने वाली एवं मधुर बोलने वाली इस कोयल को आज्ञा दो। हे मदन! आपके द्वारा एकान्त में की गई काम-क्रीड़ाओं को स्मरण करके मुझे शान्ति नहीं हो रही है। हे रति-कुशल! तुम्हारे द्वारा किया गया वसन्त पुष्पों का अलङ्कार आज भी वैसा ही है परन्तु आपका वह सुन्दर शरीर नहीं दिखाई देता है। हे प्रिय! आप मेरे एक ही पैर में महावर लगाकर चले गए अतः शीघ्र आकर मेरे इस दायें चरण को भी महावर से भर दो (रंग दो)। हे प्रिय! मैं अग्निप्रवेश द्वारा शीघ्र ही तुम्हारे समीप आकर तुम्हारे गोद में बैठूंगी। हे प्रियवल्लभ! मैं शीघ्र ही तुम्हारा अनुगमन करूँगी, परन्तु यह लोकापवाद तो चिरस्थायी बन ही गया कि कामदेव के बिना रति क्षणमात्र के लिए जीवित थी ही। कुसुम-धनुष की रचना करने वाला तुम्हारा प्रिय मित्र वसन्त भी तो दिखाई नहीं पड़ता! वह भी तुम्हारे जैसा शिव की कोपाग्नि से भस्म तो नहीं हो गया? यदि उसे भी देख लेती तो कुछ दुःख कम हो जाता।

इस प्रकार विलाप करती हुई शोकातुर कामवधू (रति) को सान्त्वना देने के लिए वसन्त स्वयं उसके सामने उपस्थित हुआ। वसन्त को देखकर रति अधिक रोने लगी और छाती पीटने लगी क्योंकि आत्मीय जन को देखकर दुःख और बढ़ जाता है तथा अश्रु आदि के रूप में वह बाहर उमड़ पडता है। दुःख से अत्यन्त व्याकुल रति उस वसन्त से बोली—हे मधो, देखो—तुम्हारे प्रिय मित्र काम की क्या दशा हो गई? कबूतर के समान उसके शरीर की भस्म (राख) को हवा इधर-उधर उड़ा रही है। फिर मदन का स्मरण करके बोली—हे स्मर! अब दर्शन दो। तुम्हारा प्रिय मित्र वसन्त तुम्हें देखने के लिए उत्कण्ठित है। तुम मेरी उपेक्षा कर सकते हो पर वसन्त की नहीं, क्योंकि पुरुषों का स्त्रियों के प्रति प्रेम चञ्चल होता है परन्तु अपने बन्धुजन के प्रति चञ्चल नहीं होता। वसन्त के

कारण ही देव-दानव सहित यह सम्पूर्ण जगत् आपके धनुष के वशीभूत हुआ है। यानी सम्पूर्ण विश्व पर आपने अधिकार जमा लिया था। ऐसे उपकारक मित्र के प्रति दर्शन देना सर्वथा उचित है। हे वसन्त! मुझे छोड़ दिया और मेरे पतिदेव को विधि ने मार डाला तो उसकी (दैव की) यह आधी ही हिंसा हुई। इस प्रकार मेरा सहमरण नहीं हुआ है अतः अब तुम अपने प्रिय बन्धु का प्रयोजन पूर्ण करो; हे वसन्त! मुझ विवशा को अग्नि दान देकर स्वामी के समीप पहुँचा दो अर्थात् अग्नि-प्रवेश कराओ। अपने मित्र के पास मुझे भी भेज दो। भले मित्र का यही कर्तव्य होता है। जब चन्द्रमा के अस्त होने पर चन्द्रिका अस्त हो जाती है, मेघ के नष्ट होने के साथ ही बिजली भी छिप जाती है तब सचेतन मैं ऐसा क्यों न करूँ यानी पति के बिना क्यों जीवन धारण करूँ? मैं प्रिय के शरीर के सुन्दर भस्म को स्तनों में लगाकर इस चिताग्नि में सो जाऊँगी। हे वसन्त! तुम हम दोनों के सुरतकाल में पुष्पशय्यादि तैयार करने में अनेक बार सहायक बने हो अतः आज भी तुम मेरी चिता को तैयार करो। मैं तुमसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूँ। हे वसन्त! तुम शीघ्र चिता बनाकर जला दो, तुम जानते हो कि काम मेरे बिना क्षणमात्र भी नहीं रह सकता है। हे वसन्त! तुम इस कार्य को सम्पन्न करके हम दोनों के लिए एक ही जलाञ्जलि से तर्पण भी करना, जिससे तुम्हारा प्रिय बन्धु मदन परलोक में मेसे साथ ही उसका पान कर सके। हे वसन्त! अपने मित्र कामदेव का और्ध्वदैहिक कार्य करते समय आम की मंजरी अवश्य प्रदान करना क्योंकि वह उन्हें अतिप्रिय थी।

इसी बीच आकाशवाणी ने रति में प्राण का संचार अनुग्रह किया। आकाशवाणी हुई कि "हे रति! तुम्हारा पति कुछ काल के बाद तुमसे पुनः मिलेगा।" इस प्रकार देववाणी ने रति को शरीर-त्याग से निवृत्त कर दिया और उसी देववाणी पर विश्वास करके मदनमित्र वसन्त ने भी युक्तिपूर्ण वचनों से अपने प्रिय मित्र कामदेव की पत्नी रति को आश्वस्त किया। इस प्रकार आकाशवाणी और वसन्त के आश्वासन को सुनकर दुर्बल शरीर वाली रति अपने पति के शापान्त समय की वैसे ही प्रतीक्षा करने लगी जैसे चन्द्रमा की कला सायंकाल की प्रतीक्षा करती है।

●

॥ श्रीः ॥

कुमारसम्भवम्

'सञ्जीविनी' 'बकुला' हिन्दीव्याख्योपेतम्

चतुर्थः सर्गः

मूर्च्छिता रतिरित्युक्तम् । सम्प्रति तद्वृत्तान्तमेवाह—

अथ मोहपरायणा सती विवशा कामवधूर्विबोधिता ।
विधिना प्रतिपादयिष्यता नववैधव्यमसह्यवेदनम् ॥ १ ॥

अन्वयः—अथ मोहपरायणा सती विवशा कामवधूः असह्यवेदनं नववैधव्यं प्रतिपादयिष्यता विधिना विबोधिता ।

सञ्जीविनी—अथेति । अथानन्तरं मोहो मूर्च्छा परमयनमाश्रयो यस्या सा मोहपरायणा मोहैकशरणा सती । 'परायणमभिप्रेते तत्परे परमाश्रये' इति यादवः । विवशा मूढत्वान्निश्चेष्टा कामवधू रतिः । असह्या दुःसहा वेदना यस्मिस्तत्तथोक्तम् । विधवाया गतभर्तृकाया भावो वैधव्यम् । नवं च तद्वैधव्यं चेति नववैधव्यम् । नवग्रहणं दुःसहत्वद्योतनार्थम् । प्रतिपादयिष्यता अनुभावयिष्यता । क्रियार्थक्रियायां लृट् । विधिना दैवेन । "विधिर्विधाने दैवे च" इत्यमरः । विबोधिता । वैधव्यानुभवफलोऽयं विधिरिति भावः । अस्मिन् सर्गे वियोगिनीवृत्तानि—"विषमे ससजा गुरुः समे सभरा लोऽथ गुर्वियोगिनी" इति लक्षणात् ।

शब्दार्थः—अथ = कामदेव के भस्म होने जाने पर पार्वती के चले जाने के अनन्तर । मोहपरायणा सती = मूर्च्छा को प्राप्त होती हुई, विवशा = निश्चेष्ट हुई, कामवधूः = रति को, असह्यवेदनं = असहनीय पीडा वाले, नववैधव्यं = नये वैधव्य के दुःख को, प्रतिपादयिष्यता = अनुभव करने की इच्छा वाले, विधिना = दैव के द्वारा, विबोधिता = जगा दी गयी अर्थात् मूर्च्छा दूर हो गई ।

सरलार्थः—कामदेवभस्मके त्रिलोचने अन्तर्हिते सति पतिवियोगेन मूर्छिता निश्चेष्टा इव मदनवधूः नूतनवैधव्यस्यासह्यदुःखं सोढुं दैवेन पुनः प्रबोधिता।

व्याकरण-समास-कोश—मोहपरायणा = मोहः परम् अयनं यस्याः सा मोहपरायणा। विवशा = विगतः वशः यस्याः सा विवशा। असह्यवेदनम् = सोढुं शक्या सह्या न सह्या असह्या सा वेदना यस्मिन् तत् असह्यवेदनम्। नववैधव्यम् = विगतः धवः यस्याः सा विधवा "विश्वस्ताविधवे समे" (अम०)। विधवायाः भावो वैधव्यम्, नवं च तत् वैधव्यं नववैधव्यं तत्। प्रतिपादयिष्यतीति प्रतिपादयिष्यन् तेन प्रतिपादयिष्यता, विधिः—"दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः" (अमर०)।

छन्दः—इस सर्ग में श्लोक संख्या १ से ४४ तक वियोगिनी छन्द है। लक्षण के लिए संजीविनी टीका देखिये।

हिन्दी—शिवजी के अन्तर्धान होने पर पार्वती के चले जाने के अनन्तर मूर्छित होकर निश्चेष्ट पड़ी हुई कामपत्नी रति को नये वैधव्य के असह्य दुःख का अनुभव कराने के लिये दैव ने पुनः जगा दिया अर्थात् उसकी मूर्छा को दूर कर दिया॥ १॥

अवधानपरे चकार सा प्रलयान्तोन्मिषिते विलोचने।
न विवेद तयोरतृप्तयो प्रियमत्यन्तविलुप्तदर्शनम्॥ २॥

अन्वयः—सा प्रलयान्तोन्मिषिते विलोचने अवधानपरे चकार। किन्तु प्रियम् अतृप्तयोः तयोः अत्यन्तविलुप्तदर्शनम् विवेद।

सं०—अवधानेति। सा रतिः प्रलयान्ते मूर्च्छावसाने। "प्रलयो नष्टचेष्टता" इत्यमरः। उन्मिषिते उन्मीलिते विलोचने। अवधानं परं प्रधानं ययोस्ते अवधानपरे दिदृक्षयावहिते चकार। द्रष्टव्याभावात्तु न विवेदेत्याह—नेति। प्रियं काममतृप्तयोस्तृप्तिं न गतयोः। नित्यदिदृक्षमाणयोरित्यर्थः। तयोर्लोचनयोः दर्शनक्रियापेक्षया। सम्बन्धे षष्ठी। अत्यन्तविलुप्तं दर्शनं स्वलोचनयोः करणयोर्यस्य कर्मभूतस्य तमत्यन्तविलुप्तदर्शनं सन्तं न विवेद न ज्ञातवती। प्रियनाशापरिज्ञानाद्दिदृक्षाऽक्रम इति तात्पर्यार्थः।

शब्दार्थः—सा = वह रति, प्रलयान्तोन्मिषिते = मूर्च्छा के दूर होने पर

खुले हुए, विलोचने = नेत्रों को, अवधानपरे = देखने में तत्पर, चकार = कर दिया। किन्तु प्रियम् = प्रिय को, अतृप्तयोः = न देखने के कारण अतृप्त, तयोः= उन नेत्रों का, अत्यन्तविलुप्तदर्शनम् =सर्वथा न दिखाई पड़ना, न = नहीं, विवेद= जान सकी।

सरलार्थः—मूर्च्छापगमे सति रतिः कामं द्रष्टुकामा स्वकीये नेत्रे सावधान-परे चकार, परं हरकोपाग्निपतनसमय एव मोहमुपगता सा तयोरत्यन्तविलुप्त-दर्शनं कामं मृतमिति न ज्ञातवतीत्यर्थः।

व्या० स० कोश—प्रलयान्तोन्मिषिते = प्रलयस्य अन्तः प्रलयान्तः, प्रलयान्ते उन्मिषिते प्रलयान्तोन्मिषिते, ते। अवधानपरे = अवधानं परं ययोस्ते अवधानपरे, ते। 'अवधानं समाधानं प्रणिधानं तथैव च' इति कोषः। प्रियम्—'दयितं वल्लभं प्रियम्' (अम०)। विवेद = विद् ज्ञाने + लिट्।

हिन्दी—मूर्च्छा के दूर हो जाने पर रति ने कामदेव को देखने की इच्छा से नेत्रों को खोलकर देखा। परन्तु उन आँखों के लिये प्रिय का दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है, इस बात को वह (शिव की कोपाग्नि के निकलने के समय ही मूर्च्छित हो जाने के कारण) न जान सकी।

विशेष—कवि ने यहाँ 'प्रलय' शब्द का प्रयोग 'मूर्च्छा' के अर्थ में किया है। अलङ्कार ग्रन्थों में भी यह एक व्यभिचारीभाव माना गया है जिसका अर्थ है चेतना की हानि—"प्रलयः सुखदुःखाद्यैर्गाढ़मिन्द्रियमूर्च्छनम्" (प्रता०) ॥ २ ॥

अयि जीवितनाथ ! जीवसीत्यभिधायोत्थितया तया पुरः।
ददृशे पुरुषाकृति क्षितौ, हरकोपानलभस्म केवलम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—अयि जीवितनाथ ! जीवसि ? इति अभिधाय उत्थितया तया पुरः क्षितौ पुरुषाकृति केवलं हरकोपाऽनलभस्म ददृशे।

सं०—अयीति। अयीति प्रश्ने। 'अयि प्रश्नानुनययोः" इति विश्वः। अयि जीवितनाथ जीवसि प्राणिषि कच्चिदित्यभिधायोत्थितया तया रत्या पुरोऽग्रे क्षितौ पुरुषस्याकृतिरिवाकृतिर्यस्य तत् पुरुषाकृति केवलमेकं हरकोपानलभस्म ददृशे दृष्टम् न तु पुरुष इति भावः।

शब्दार्थ—अयि जीवितनाथ = हे प्राणनाथ ! जीवसि = जीवित हो ? इति

अभिधाय = इस प्रकार कहकर, उत्थितया = खड़ी हुई, तया = रति के द्वारा, पुरः = सामने, क्षितौ = भूमि पर, पुरुषाकृति = पुरुष के आकारवाली, केवलं = केवल, हरकोपानलभस्म = शंकर की क्रोधाग्नि से जले हुए कामदेव की भस्म को, ददृशे = देखा ।

सरलार्थः—हरकोपाग्निपतनमध्य एव मोहमुपगता सा रतिः मूर्च्छान्ते स्वप्रियं मृतमित्यजानन्ती प्रियदर्शनार्थमुत्सुका आपाततो भर्तृशरीरसंस्थानं पुरस्तादवलोक्य हे प्राणनाथ, त्वं जीवसि ? इत्युक्त्वा तत्समीपं जगाम, परं सा पुरुषाकारं हरकोपानलरज एव विलोकयामास, न तु स्वप्रियम् ।

व्या० स० कोश—'अयि प्रश्नाऽनुनयोः' (विश्व०) । जीवितस्य नाथः जीवितनाथः, तत्सम्बुद्धौ हे जीवितनाथ ! । कोप एव अनल इति कोपाऽनलः 'मयूर व्यंसकादश्च' इससे रूपकसमास । हरस्य कोपानलः हरकोपानलः, तस्य भस्म हरकोपानलभस्म । 'आश्रयाशो बृहद्भानुः कृशानुः पावकोऽनलः' (अम०) । ददृशे = दृशिस् प्रेक्षणे + लिट् (कर्मणि) ।

हिन्दी—कुछ होश में आने पर रति कामदेव के शरीरसंस्थान को अकस्मात् सामने पड़ा हुआ देखकर हे प्राणनाथ, तुम जीवित हो ? इसप्रकार कहती हुई उठ कर शीघ्र उसके समीप पहुँची, परन्तु वहाँ उसने पुरुषाकृतिरूप शिव के कोपानल की भस्म को ही देखा ।

विशेष—यहाँ 'जीवित' शब्द का अर्थ जीवन, प्राण अथवा अस्तित्व है । अन्यत्र प्रयोग द्रष्टव्य हैं—"कन्येयं कुलजीवितम्" (कु० ६।६।३)। 'त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयम्" (उ० रा० ३।२६) ॥ ३ ॥

अथ सा पुनरेव विह्वला वसुधालिङ्गनधूसरस्तनी ।
विललाप विकिर्णमूर्धजा समदुःखामिव कुर्वती स्थलीम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—अथ, पुनः एव विह्वला वसुधालिङ्गनधूसरस्तनी, विकीर्णमूर्धजा, सा स्थलीम्, समदुःखाम्, कुर्वती इव विललाप ।

सं०—अथेति । अथ भस्मदर्शनानन्तरं पुनरेव विह्वला विक्लवा वसुधालिङ्गनधूसरस्तनी वसुधालिङ्गनेन क्षितिलुण्ठनेन धूसरौ धूसरवर्णौ स्तनौ कुचौ यस्याः सा तथोक्ता । "स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्" इति ङीप् । विकीर्णमूर्धजा विकीर्णा विक्षिप्ता मूर्धजाः केशा यस्याः सा तथोक्ता सा रति । स्थलीं वनभूमिम् ।

तत्रत्यान् प्राणिन. इत्यर्थः। "जानपदकुण्डगोणस्थल—" इत्यादिना ङीष्। समदुःखां स्वतुल्यशोकां कुर्वतीव विललाप परिदेवितवती। "विलापः परिदेवनम्" इत्यमरः।

शब्दार्थः—अथ = बाद में, पुनः एव = फिर से, विह्वला = अत्यन्त दुःखी होती हुई, वसुधालिङ्गनधूसरस्तनी = भूमि पर लोटने से जिसके स्तन धूसर वर्ण के हो गये थे, ऐसी विकीर्णमूर्धजा = जिसके केश फैले हुए हैं, सा = रति, स्थलीम् = वनभूमि को अर्थात् वहाँ के प्राणीमात्र को, समदुःखाम् = अपने ही समान दुःखित, कुर्वती = करती हुई, इव = तरह, विललाप = विलाप करने लगी।

सरलार्थः—अनन्तरं भर्तुः मरणनिश्चयेन विक्लवा सा क्षितौ विलुण्ठनेन धूसरितकुचा विकीर्णकेशा च सती वनभूमिं तत्रत्यान् प्राणिनः तुल्यशोकाकुलान् विदधती इव विलापमकरोत्।

व्या० स० कोश—वसुधाया आलिङ्गनं वसुधालिङ्गनम् "वसुधोर्वी वसुन्धरा" (अम०)। धूसरौ स्तनौ यस्याः सा धूसरस्तनी 'इषत्पाण्डुस्तु धूसरः' (अम०)। वसुधालिङ्गनेन धूसरस्तनी वसुधालिङ्गनधूसरस्तनी। विशेषेण कीर्णाः विकीर्णाः मूर्ध्नि जाताः मूर्धजाः, विकीर्णा मूर्धजाः यस्याः सा विकीर्णमूर्धजा। 'चिकुरः कुन्तलो बालः कचः केशः शिरोरुहः' (अम०) समं दुःखं यस्याः सा समदुःखा ताम्। 'विक्लवो विह्वलः स्यात्तु' (अम०)। विललाप='वि'+लप्+लिट्। 'विलापः परिदेवनम्' (अमर०)।

हिन्दी—तब अपने पति की मृत्यु का निश्चय हो जाने पर रति अत्यन्त व्याकुल होकर भूमि पर लोटने लगी जिससे उसके स्तन धूसर वर्ण के हो गये एवं केशपाश खुल गये। उस समय वह सम्पूर्ण वनस्थली को अपने समान ही दुःखित करती हुई-सी करुण विलाप करने लगी ॥ ४ ॥

> उपमानमभूद्विलासिनां करणं यत्तव कान्तिमत्तया।
> तदिदं गतमीदृशीं दशां न विदीर्ये कठिनाः खलु स्त्रियः ॥ ५ ॥

अन्वयः—तव यत् करणं कान्तिमत्तया विलासिनाम् उपमानम् अभूत्, तत् इदम् ईदृशीं दशां गतं, तथाऽपि अहं न विदीर्ये, हि स्त्रियः कठिनाः खलु।

सं० – उपमानेति । तव यत् करणं गात्रम् । "करणं साधकतमं क्षेत्रगात्रेन्द्रियेष्वपि" इत्यमरः । कान्तिमत्तया सौन्दर्येण हेतुना विलासिनां विलसनशोलानाम् । "वौ कषलस—" इत्यादिना घिनुण्प्रत्ययः । उपमीयते येन तदुपमानमभूत् । तत्करणमिदमीदृशीं दशामवस्थां गतम् । भस्मीभूतमित्यर्थः । तथापि न विदीर्ये न विदीर्णा भवामि । कर्तरि लङ् । तथाहि । स्त्रियः कठिनाः खलु । कठिनत्वादविदीर्यमाणत्वमित्यर्थः । कारणात्कार्यसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासः—"धीरसञ्चारिणी दृष्टिर्गतिर्गोवृषभाञ्चिता । स्मितपूर्वं तथालापो विलास इति कीर्तितः" ।

शब्दार्थः—तव = तुम्हारा, यत् = जो, करणम् = शरीर, कान्तिमत्तया = सौन्दर्य का कारण होने से, विलासिनाम् = कामुक पुरुषों का, उपमानम् = उपमा का आधार, अभूत् = होता था, तत् = वह तुम्हारा शरीर, इदम् =इस, ईदृशीम्= ऐसी, दशाम् = दशा को, गतम् = प्राप्त हुआ है । तथापि = फिर भी, अहं = मैं (तुम्हारी अर्द्धाङ्गिनी), न = नहीं, विदीर्ये = विदीर्ण होती हूँ । हि = अतः, स्त्रियः = स्त्रियाँ, कठिना = कठोर होती हैं, खलु = यह बात निश्चित है ।

सरलार्थः—हे प्रिय, तवेदं वपुः सौन्दर्योत्तमगुणेन विलासिजनानां कृते उपमानभूतमासीत् । तवेदं गात्रं सम्प्रति एतादृशीं दुर्दशां प्राप्तम्, तथाप्यहं जीवामि । स्त्रियो वज्रहृदया भवन्तीति प्रवादः खलु सत्यम् ।

व्या० स० कोश—करणम् 'डुकृञ् करणे' धातु से 'करणाधिकरणयोश्च' सूत्र से ल्युट् प्रत्यय और "युवोरनाकौ" सूत्र से अनादेश हुआ । प्रशस्ता कान्तिः यस्य तत् कान्तिमत्, कान्तिमतो भावः कान्तिमत्ता तया कान्तिमत्तया । उपमीयते अनेनेति उपमानम् । कठिनाः–"दारुणं कठिनं क्रूरं कठोरं निष्ठुरं दृढम्' (अम०) ।

हिन्दी—हे प्रिय, तुम्हारा शरीर उत्तम सौन्दर्य के कारण लोक में विलासीजनों का उपमानभूत हुआ था (अर्थात् दूसरे के सौन्दर्य की उपमा तुम्हारे शरीर से ही दी जाती थी) वही तुम्हारा शरीर इस समय ऐसी दुर्दशा को प्राप्त हुआ है और मैं तुम्हारी अर्द्धाङ्गिनी फिर भी जीवित हूँ—मेरे टुकड़े-टुकड़े नहीं हो जाते । सचमुच ही स्त्रियाँ अति कठोर हुआ करती हैं ।

विशेषः—उपमानम्—उपमा के लिए चार अपेक्षित गुण हैं—उपमान, उपमेय, वाचक शब्द और तुल्यधर्म । उपमान उसे कहते हैं जिसके द्वारा किसी

की तुलना की जाय। अन्यत्र भी जैसे—"उपमानस्यापि सखे प्रत्युपमानं वपुः" (विक्रम० २।३)। कवि ने समरूपता के अर्थ में भी प्रयोग किया है—"जाता-स्तदूर्वोरुपमानबाह्याः (कु० १।३६)। 'करण शब्द इन्द्रिय और शरीर दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है जैसे—"वपुषा करणोज्झितेन" (रघु० ८।३८) "पटु-करणैः प्राणिभिः" (मेघ० ५) व्याक०-न्याय आदि में करण शब्द को उत्कृष्टतम कारण के अर्थ में लिया गया है 'साधकतमं करणम्' (पा०+तर्क०)॥ ५॥

क्व नु मां त्वदधीनजीवितां विनिकीर्य क्षणभिन्नसौहृदः।
नलिनीं क्षतसेतुबन्धनो जलसङ्घात इवाऽसि विद्रुतः॥ ६॥

अन्वयः—हे प्रिय ! क्षतसेतुबन्धनः जलसंघातः नलिनीम् इव त्वदधीनं-जीवितां मां विनिकीर्य, क्षणभिन्नसौहृदः सन् क्व नु विद्रुतः असि।

सं०—क्वेति। हे प्रिय क्षतसेतुबन्धनो भग्नसेतुबन्धो जलसंघातो जलौघो नलिनीमिव। जलैकायत्तजीवितामिति शेषः। त्वदधीनजीवितां त्वदायत्तप्राणां मां क्व नु विनिकीर्य कुत्र वा निक्षिप्य क्षणभिन्नसौहृदः क्षणत्यक्तसौहार्द्रः सन्। विद्रुतः पलायितोऽसि। सेतुसौहृदयोः स्थितिहेतुत्वेन साम्यम्। सुहृदो भावः सौहृदम्। युवादित्वादण्प्रत्ययः। "हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु" इति हृदादेशः। अणि हृद्भावान्न "हृद्भगसम्धिन्ते पूर्वपदस्य च" इत्युभयपदवृद्धिः। हृदभूत-स्याण्विधाने तूभयपदवृद्धिः स्यात्। यथा सुहृदो भावः सौहार्दमिति। तदेवाह वामनः—"सौहृददौर्हृदशब्दावनणि हृद्भावात्" इति।

शब्दार्थः—क्षतसेतुबन्धनः = बाँध को तोड़ने वाला, जलसंघातः = प्रचण्ड जलप्रवाह, नलिनीम् इव = जैसे कमलिनी को (उसी प्रकार) त्वदधीनजीविताम् = तुम्हारे ही अधीन जिसका जीवन है, ऐसी, माम् = मुझको, विनिकीर्य = बिखेर करके—छोड़करके, क्षणभिन्नसौहृदः = क्षणभर में ही तोड़ दिया है सौहार्द जिसने ऐसे, सन् = होते हुए, क्व = कहाँ, विद्रुतः असि = भाग गये हो।

सरलार्थः—हे प्रिय, यथा प्रचण्डजलप्रवाहः सेतुबन्धनं विदीर्य जलैकाश्रित-जीवितां कमलिनीमितस्ततो विक्षिप्य गच्छति, तथैव त्वदेकाश्रितजीवनां मामपि परित्यज्य त्वं कुत्र पलायितोऽसि।

व्या० स० कोश—सतोः बन्धनं सेतुबन्धनं, क्षतं सेतुबन्धनं येन स क्षतसेतु-

बन्धनः। "सेतुराली स्त्रियां पुमान्" (अम०)। तव अधीनं जीवितं यस्याः सा त्वदधीनजीविता ताम्। विद्रुतः='वि' द्रु +क्त।

हिन्दी—जैसे सेतु रूप बाँध को तोड़ने वाला जलसमूह का वेगयुक्त प्रवाह (जलाधीन जीवन वाली) कमलिनी को तोड़कर इधर-उधर चला जाता है, उसी प्रकार तुम भी मेरे प्रेम को ठुकरा कर तुम्हारे ही अधीन जीवनवाली मुझ (रति) को छोड़कर कहाँ चले गये हो ?

विशेष—'जीवित' शब्द के लिए श्लोक ३ देखें। सौहृदः = स्नेह, सद्भाव,—यत्सौहृदादपि जनाः शिथिलीभवन्ति (मृच्छ० १।१३)॥ ६॥

कृतवानसि विप्रियं न मे, प्रतिकूलं न च ते मया कृतम्।
किमकारणमेव दर्शनं विलपन्त्यै रतये न दीयते॥ ७॥

अन्वयः—हे प्रिय ! त्वं, मे विप्रियं कृतवान् न असि, मया च ते प्रतिकूलं न कृतम्; अकारणम् एव विलपन्त्यै रतये किं दर्शनं न दीयते।

सं०—कृतेति। हे प्रिय, त्वं मे मम विप्रियमप्रियं कृतवान्नासि। मया च ते तव प्रतिकूलम् अप्रियं न कृतम्। अकारणं निष्कारणमेव। परस्परापकाररूपकारणाभावेऽपीत्यर्थः। क्रियाविशेषणमेतत्। विलपन्त्यै। त्वद्दर्शनार्थिन्या अपीति भावः। रतये किं कथं दर्शनं न दीयते। क्रियाग्रहणाच्चतुर्थी।

शब्दार्थः—त्वम् = तुमने, मे = मेरा विप्रियम् = अप्रिय, कृतवान् = किया हो ऐसा, न = नहीं, असि = हो। मया च = और मैंने, ते = तुम्हारे, प्रतिकूलं = विपरीत, न कृतम् = आचरण नहीं किया। अकारणम् एव = बिना किसी कारण के ही, विलपन्त्यै = रोती हुई, रतये = रति के लिए, किं = क्यों, दर्शनं = दर्शन, न = नहीं, दीयते = देते हो ?

सरलार्थः—हे प्राणनाथ, त्वया मे किमपि अनिष्टं कृतं नास्ति, मया च तव विपरीतं कर्म नाचरितम्, तर्हि वियोगकारणं विनैव त्वं सकरुणं विलपन्त्याः मे दृष्टिपथं कथं नाऽऽयासि ?

व्या० स० कोश—अकारणम् = अविद्यमानं कारणं यस्मिन् कर्मणि तद्यथा अकारणम् "नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः" इस वार्तिक से नञ् बहुव्रीहि समास हुआ है।

हिन्दी—हे प्रिय, तुमने कभी मेरा कोई अप्रिय कार्य नहीं किया है और न मैंने ही तुम्हारे विपरीत अप्रिय आचरण किया है। फिर अकारण ही तुम विलाप करती हुई मुझ रति को अपना मुख क्यों दिखाते ?।

विशेष—यहाँ अर्थान्तरसंक्रमितवाच्यध्वनि है। क्योंकि 'रतये' इस पद में स्वनाम ग्रहण से अपने पूर्व प्रेम का स्मरण कराया गया है।

विप्रियमाशङ्कते—

स्मरसि स्मर मेखलागुणैरुत गोत्रस्खलितेषु बन्धनम्।
च्युतकेशरदूषितेक्षणान्यवतंसोत्पलताडनानि च ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे स्मर, गोत्रस्खलितेषु, मेखलागुणैः बन्धनं स्मरसि ? उत च्युतकेशरदूषितेक्षणानि अवतंसोत्पलताडनानि च स्मरसि ?

सं०—स्मरसीति। हे स्मर। गोत्रस्खलितेषु नामव्यत्यासेषु। "गोत्रं नाम्नाचले कुले" इति विश्वः। मेखलागुणैर्बन्धनं स्मरसि उत स्मरसि वा। "विकल्पे किं किमुत च" इत्यमरः। च्युतकेशरैर्भ्रष्टकिञ्जल्कैर्दूषितेक्षणे येषु तानि अवतंसोत्पलताडनानि। सधूलिक्षेपताडनानीत्यर्थः। स्मरसि वा। अपकारस्मरणादिदमदर्शनमिति भावः।

शब्दार्थः—हे स्मर = हे काम, गोत्रस्खलितेषु = (मुख से प्रमादवश सपत्नी का) नाम निकल जाने पर, मेखलागुणैः = मेखला बाँधने की रस्सी से, बन्धनम् = बाँधना (प्रणय कोप के कारण), स्मरसि = याद करते हो ? उत = अथवा, च्युतकेशरदूषितेक्षणानि = गिरे हुए पराग से दूषित नेत्रों को, अवतंसोत्पलताडनानि च = कर्णाभरणों के कमलों से किये गये ताडनों को, स्मरसि = याद करते हो क्या ? अर्थात् क्या मेरे अपराधों को स्मरण करके ही मुझे दर्शन नहीं दे रहे हो ?

सरलार्थः—हे प्रिय, कदाचित् रहसि त्वया सपत्नीनामोच्चारणे कृते प्रणयकोपात् मया काञ्चीगुणैस्तव बन्धनमाचरितम्, तथा कर्णाभरणकुवलयेन तव मुखताडनं कृतमासीत्, यस्य भ्रष्टपरागैस्तव नेत्रपीडनमपि अभूत्। त्वमेतानि स्मरसि किम् ? ममापराधं स्मृत्वैव त्वं मत्समीपं नागच्छसि ?।

व्या० स० कोश—गोत्रे स्खलितानि गोत्रस्खलितानि तेषु गोत्रस्खलितेषु। 'गोत्रं नाम्न्यचले कुले, (विश्व०)। "बन्धनं प्रसितिश्चारः" (अम०)। च्युताश्च

ये केशराः च्युतकेशराः, दूषिते इक्षणे येषु तानि दूषितेक्षणानि, च्युतकेशरैः दूषितैक्षणानि च्युतकेशरदूषितेक्षणानि तानि। "किञ्जल्कः केशरो स्त्रियाम्" (अम०)। अवतंसस्य उत्पलानि अवतंसोत्पलानि, तैः ताडनानि अवतंसोत्पलताडनानि तानि "पुंस्युत्तंसावतंसौ द्वौ कर्णपूरे च शेखरे" (अम०)।

हिन्दी—हे प्रियवल्लभ, किसी समय तुम्हारे द्वारा प्रमादवश मेरे सामने सपत्नी का नाम उच्चारण करने पर मैंने प्रणयकोप से तुम्हें मेखला की डोरी से बाँध दिया था अथवा केशर-पराग के गिरने से तुम्हारी आँखों में पीडा हुई थी तथा कर्णाभूषणों के कमलों से मैंने तुम्हारे मुख पर प्रहार किया था—क्या इन्हीं सब अपराधों को स्मरण कर रहे हो ? (और इसी कारण मुझ से दूर चले गये हो ?)

विशेषः—गोत्रस्खलितेषु = गोत्र-नाम, अभिधान, वंश इत्यादि अर्थ हैं। "जगाद गोत्रस्खलिते च का न तम्" (नै० १।३०)। "मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा" (मेघ० ६८) ॥ ८ ॥

हृदये वससीति मत्प्रियं यदवोचस्तदवैमि कैतवम्।
उपचारपदं न चेदिदं त्वमनङ्गः कथमक्षता रतिः ॥ ९ ॥

अन्वयः—"हृदये वससि" इति मत्प्रियं यत् अवोचः, तत् कैतवम् अवैमि, इदम् उपचारपदं, न चेत् त्वम् अनङ्गः, कथं रतिः अक्षता।

सं—हृदय इति। हृदये वससीति स्मरवाक्यानुवादः। इत्येवंरूपं मत्प्रियं यदवोच उक्तवानसि। ब्रूञो लुङि "वच उम्" इत्युमागमः। तत् कैतवमवैमि मिथ्येति मन्ये। इदं वचनमुपचारपदं परस्य रञ्जनार्थं यदसत्यभाषणं स उपचारस्तस्य पदं स्थानम्। कैतवस्थानमिति यावत्। न चेत्त्वमनङ्गोऽशरीरः। कथं रतिरक्षताविनष्टा। आश्रयनाशेऽप्याश्रितमविनष्टमिति विरोधादिति भावः।

शब्दार्थः—हृदये = हृदय में, वससि = रहती हो, इति = इस प्रकार का, मत्प्रियं = मेरा प्रिय—मुझे अच्छा लगने वाला, यत् = जो वचन, अवोचः = तुमने कहा था, तत् = वह, कैतवम् = मिथ्या ही, अवैमि = जानती हूँ। इदम् = यह वचन, उपचारपदम् = दूसरे को खुश करने के लिए सौजन्य का बाहरी प्रदर्शन। न चेत् = यदि ऐसी बात न होती तो, त्वं = तुम, अनङ्गः = शरीर रहित, और कथम् = कैसे, रतिः = तुम्हारी पत्नी, अक्षता = पूर्णशरीरा हो ?

सरलार्थः—'त्वं हृदये वससी'ति मत्प्रियं त्वया भणितमिति मिथ्या एव जानामि। इदं तव वचनं तु रञ्जनार्थमुपचारमात्रमेवासीत्। अन्यथा त्वय्यनङ्गे सति तवाश्रयभूताऽहं कथमविनष्टा एव अभवम्।

व्या० स० कोश—अवोचः = 'वच' + ब्रूञ् + लुङ् मध्यम पु० एकवचन। कैतवम्= "कपटोऽस्त्री व्याजदम्भोपधयश्छद्मकैतवे" (अम०) अनङ्गः = अविद्य' मानं अङ्गं यस्य स अनङ्गः (नञ् बहुव्रीहि) "कन्दर्पो दर्पकोऽनङ्गः" (अम०)।

हिन्दी—'तुम मेरे हृदय में बसती हो' ऐसा मुझे प्रिय लगने वाला जो वचन कहा करते थे उसे मैं झूठा ही समझती हूँ। वह तो केवल मुझे खुश करने के लिए ही था। अन्यथा तुम्हारे अनङ्ग (शरीर रहित) हो जाने पर तुम्हारे हृदयाश्रित मैं अविनष्ट (पूर्ण शरीर वाली) कैसे रह जाती ? ॥ ९ ॥

न च मे कश्चिद्विचारः किन्तु लोकः शोच्यत इत्याह—

परलोकनवप्रवासिनः प्रतिपत्स्ये पदवीमहं तव।
विधिना जन एष वञ्चितस्त्वदधीनं खलु देहिनां सुखम् ॥ १० ॥

अन्वयः— परलोकप्रवासिनः तव पदवीम् प्रतिपत्स्ये, विधिना एष जनः वञ्चितः देहिनाम् सुखं त्वदधीनं खलु।

सं—परलोकेति। परलोकं प्रति नवप्रवासिनोऽचिरप्रोषितस्य। अनेनानुगमनकालानतिपातः सूच्यते। तव पदवीं मार्गं प्रतिपत्स्ये। त्वामनुगमिष्यामीत्यर्थः। अतो मे नास्ति विचार इति भावः। किन्तु विधिना दैवेन एष जनो लोको वञ्चितः प्रतारितः। देहिनां सुखं त्वदधीनं त्वय्यधीनं खलु। अधिशब्दस्य शौण्डादिकत्वात् "सप्तमी शौण्डैः" इति समासः। "अष्युत्तरपदात्" इति खप्रत्ययः। एवमन्यत्रापि सुखप्रदाभावे कुतः सुखमिति भावः।

शब्दार्थः—परलोकप्रवासिनः = परलोक का नया प्रवास करने वाले, तव = तुम्हारा, पदवीम् = मार्ग को, प्रतिपत्स्ये = ग्रहण करूँगी। विधिना = दैव ने, एष जनः = मुझे, वञ्चितः = ठग लिया है। देहिनाम् = समस्त प्राणियों का, सुखम् = सुख, त्वदधीनम्-तुम्हारे ही अधीन है।

सरलार्थः—हे प्रिय, स्वर्गनूतनप्रवासिनस्तवानुगमनं सद्य एव करिष्यामि। मोहमुपगतत्वेनाऽहं विधिना वञ्चिता यतो जगतः समेषां प्राणिनां सुखं त्वदधीनमेवास्ति।

व्या० स० कोश—परश्चासौ लोकः परलोकः, प्रवासः अस्यास्तीति प्रवासी, नवश्चासौ प्रवासी नवप्रवासी, परलोकस्य नवप्रवासी परलोकनवप्रवासी तस्य परलोकनवप्रवासिनः। विधिना—"दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः" (अम०)। त्वयि अधीनम् त्वदधीनम्।

हिन्दी—हे प्रिय, स्वर्गलोक का नूतन प्रवास करने वाले तुम्हारे मार्ग का मैं शीघ्र ही अनुगमन करूँगी। दैव के द्वारा मैं ठग ली गयी हूँ (जो कि मुझे मूर्छित कर दिया) क्योंकि मेरा ही नहीं, समस्त संसार के प्राणियों का सुख तुम्हारे ही अधीन है॥ १०॥

विशेषः—पदवीम् = मार्ग, पथ, स्थान, पदचिह्न—अनुयाहि साधुपदवीम् (भर्तृ—२।७७)।

रजनीतिमिराऽवगुण्ठिते पुरमार्गे घनशब्दविक्लवाः।
वसतिं प्रिय! कामिनां प्रियास्त्वदृते प्रापयितुं क ईश्वरः॥ ११॥

अन्वयः—हे प्रिय! रजनीतिमिराऽवगुण्ठिते पुरमार्गे घनशब्दविक्लवाः प्रियाः कामिनां वसतिं प्रापयितुं त्वत् ऋते कः ईश्वरः।

सं०—रजनीति। हे प्रिय। रजनीतिमिरेण अवगुण्ठित आवृते पुरमार्गे घन-शब्दविक्लवा गर्जितभीताः प्रियाः कामिनां वसतिं प्रापयितुं त्वदृते त्वां विना। "अन्यारादितरर्ते—" इत्यादिना पञ्चमी। क ईश्वरः शक्तः। न कश्चिदित्यर्थः। न हि कामान्धानां भीतिरस्तीति भावः।

शब्दार्थः—प्रिय! = हे प्राणवल्लभ; रजनीतिमिराऽवगुण्ठिते = रात्रि के गाढ़ अन्धकार से आवृत, पुरमार्गे = नगर के रास्ते पर, घनशब्दविक्लवाः = मेघ के गर्जन से डरी हुई, प्रियाः = कामिनी स्त्रियों को, कामिनाम् = कामुक जनों के, वसतिम् = निवास स्थान को, प्रापयितुं = प्राप्त कराने में, त्वत् = तुम्हारे, ऋते = बिना, कः = कौन, ईश्वरः = समर्थ है?

सरलार्थः—हे प्रिय, सम्प्रति निशायां घनान्धकारलिप्तेषु राजमार्गेषु मेघ-गर्जनेन भीताः कामिनीः कामुकानां गृहं प्रापयितुं त्वद् विना कः शक्तो भविष्यति।

व्या० स० कोश—रजन्याः तिमिरं रजनीतिमिरम्, तेन अवगुण्ठितः तस्मिन् रजनीतिमिराऽवगुण्ठिते। घनस्य शब्दाः घनशब्दाः तेभ्यो विक्लवाः घनशब्द-विक्लवाः, ताः। कामः अस्ति येषां ते कामिनः तेषाम्। प्रापयितुम्=णिजन्तात्

'प्र' उपसर्गपूर्वक √ 'आप्लृ' + तुमुन्। 'विभावरीतमस्विन्यौ रजनी यामिनी तमी" (अम०)।

हिन्दी – हे प्रिय, रात्रि के समय गाढ़े अन्धकार से आवृत भयानक मार्गों पर वर्षा काल में मेघ के गर्जन से भयभीत अभिसारिकाओं को प्रिय के घर तक पहुँचने में अब तुम्हारे बिना कौन सहायक होगा (अर्थात् कोई नहीं) ॥ ११ ॥

नयनान्यरुणानि घूर्णयन् वचनानि स्खलयन्पदे पदे।
असति त्वयि वारुणीमदः प्रमदानामधुना विडम्बना ॥ १२ ॥

अन्वयः – अरुणानि नयनानि घूर्णयन् पदे पदे वचनानि स्खलयन् प्रमदानां वारुणीमदः अधुना त्वयि असति विडम्बना।

सं०—नयनानीति। अरुणानि नयनानि घूर्णयन् भ्रमयन्। तथा पदे पदे प्रतिपदम्। वीप्सायां द्विरुक्तिः। वचनानि स्खलयन् विपर्यासयन् प्रमदानां वारुणीमदो मद्यमदोऽधुना त्वय्यसति विडम्बना अनुकृतिमात्रम्। मदनाभावे मदस्य निष्फलत्वादिति भावः। तथा च शिशुपालवधे—"तां मदो दयितसङ्गमभूषः" (१०।३३) इति।

शब्दार्थः—अरुणानि = लाल, नयनानि = नेत्रों को, घूर्णयन् = घुमाते हुए, पदे-पदे = पद-पद पर, वचांसि = वचनों को, स्खलयन्=लड़खड़ाते हुए, प्रमदानां= कामिनियों का, वारुणीमदः = मदिरापान का नशा, अधुना=अब, त्वयि=तुम्हारे, असति = न रहने पर, विडम्बना = अनुकृति मात्र ही है।

सरलार्थ— नेत्रयोररुणिमानमातन्वन् अनन्तरं वचनेषु प्रतिपदं स्खलयन् मदिरापानादिकृतमदोऽधुना त्वयि अनङ्गे सति उपहासमात्रमेव भविष्यति।

व्या० स० कोश—प्रकृष्टः मदः यासां ताः प्रमदाः तासाम्। वरुणस्येयं वारुणी "सुरा प्रत्यक् च वारुणी" (अम०) वारुण्याः मदः। वारुणीमदः। 'सम्मोहानन्दसम्भेदो मदिरादिकृतो मदः' इति मदलक्षणम्। घूर्ण भ्रमणे + शतृ।

हिन्दी—लाल आँखों को घुमाने वाला और पद-पद पर जबान को लड़खड़ाने वाला प्रमदाओं का मदिरापान का नशा अब तुम्हारे अनङ्ग हो जाने पर केवल उपहास का पात्र बनकर रह जाएगा ॥ १२ ॥

अवगम्य कथीकृतं वपुः प्रियबन्धोस्तव निष्फलोदयः ।
बहुलेऽपि गते निशाकरस्तनुतां दुःखमनङ्ग ! मोक्ष्यति ॥ १३ ॥

अन्वयः—हे अनङ्गः, प्रियबन्धोः तव वपुः कथीकृतम् अवगम्य निष्फलोदयः निशाकरः बहुले गते अपि तनुतां दुःखं मोक्ष्यति ।

सं०—अवगम्येति । हे अनङ्ग अशरीर ! प्रियबन्धोः प्रियसखस्य तव वपुः शरीरं कथीकृतमकथा कथा सम्पद्यमानं कृतं शब्दमात्रावशिष्टम् अपगम्य ज्ञात्वा निष्फलोदयः । उद्दीप्याभावादुद्दीपनवैफल्यमिति भावः । निशाकरश्चन्द्रो बहुले कृष्णपक्षे गतेऽपि तनुतां कार्श्यं दुःखं यथा तथा कृच्छ्रात् मोक्ष्यति । वृथा वृद्धिरिति दुःखायिष्यत इत्यर्थः ।

शब्दार्थः—हे अनङ्ग = हे काम, प्रियबन्धोः = प्रिय मित्र, तव = तुम्हारे, वपुः = शरीर को, कथीकृतम् = शब्दमात्र अवशिष्ट, अवगम्य=जानकर, निष्फलोदयः = जिसका उदय होना निष्फल हो गया है, ऐसा, निशाकरः=चन्द्रमा, बहुले= कृष्णपक्ष के, गते अपि = बीत जाने पर भी, तनुताम् = कृशता को, दुःखम् = कष्टपूर्वक जिस किसी तरह, मोक्ष्यति = छोड़ेगा ।

सरलार्थः—हे अनङ्ग, प्रियसखस्य तव शरीरं कथामात्रावशेषमिति ज्ञात्वा कामिनीकामुकसुरतसौख्यरूपफलस्याभावात् विफलोदयश्चन्द्रः कृष्णपक्षे व्यतीते अपि स्वशरीरकार्श्यं दुःखेनैव मोक्ष्यति । शुक्लपक्षेऽपि स्वशरीरपुष्टिं कृच्छ्रेणैव धारयिष्यतीति भावः ।

व्या० स० कोश—अविद्यमानं अङ्गं यस्य सः अनङ्गः तत्सम्बुद्धौ हे अनङ्ग ! प्रिया बंधवः यस्य स प्रियबन्धुः तस्य प्रियबन्धो । वपुः = 'गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः' (अम०)। कथीकृतम् = कथा यथा सम्पद्यते तथा कृतम् कथीकृतम् ।

हिन्दी—हे अनङ्ग, प्रिय मित्र तुम्हारे अशरीर हो जाने पर निष्फल उदय प्राप्त होने वाला यह चन्द्रमा कृष्णपक्ष के बीत जाने पर भी (अर्थात् शुक्लपक्ष में) अपने शरीर की दुर्बलता को बहुत कष्ट से छोड़ेगा ।

विशेषः—'बहुल'—का अर्थ 'कृष्णपक्ष' से है। अन्यत्र भी कवि ने इसका प्रयोग किया है—"करेण भानोर्बहुलावसने संधुक्ष्यमाणेव शशाङ्करेखा" (कु० ७।८) "प्रादुरासबहुलक्षणा छविः" (रघु० ११।१५) ॥ १३ ॥

हरितारुणचारुबन्धनः कलपुंस्कोकिल शब्दसूचितः ।
वद सम्प्रति यस्य बाणतां नवचूतप्रसवो गमिष्यति ॥ १४ ॥

अन्वयः—हरितारुणाचारुबन्धनः, कलपुँस्कोकिलशब्दसूचितः नवचूतप्रसवः सम्प्रति कस्य बाणतां गामिष्यति ? वद ।

सं०—हरितेति । हरितं चारुणं च । "वर्णो वर्णेन" इति तत्पुरुषः । हरितारुणं चारु बन्धन वृन्तं पुङ्खश्च यस्य स तथोक्तः । कलेन मधुरेण पुंस्कोकिलशब्देन सूचितोऽनुमापितश्च । चूतचर्वणकार्यत्वात् कलशब्दस्येति भावः । नवचूतप्रसव नवचूतकुसुमं सम्प्रति कस्य बाणतां शरत्वं गमिष्यति वद । अन्यस्य पुष्पबाणस्याभावादिति भावः ।

शब्दार्थः-हरितारुणचारुबन्धनः = नीले और लाल बन्धन से युक्त, कलपुंस्कोकिलशब्दसूचित्त, = सुन्दर कोयल के शब्द से अनुमानित, नवचूतप्रसवः = नयी आम्रमञ्जरी, सम्प्रति = इस समय, कस्य = किस पुरुष के, बाणताम् = बाण रूप में, गमिष्यति = प्राप्त होगी, वद = कहो ।

सरलार्थः—कलपुंस्कोकिलनिनादानुमितोदयं नीलरक्तमनोहरवृन्तं नूतनाम्रकुसुमं सम्प्रति त्वयि पञ्चत्वं गते कस्य शरत्वं प्राप्स्यतीति कथय ।

व्या० स० कोश—हरितं च अरुणं च हरितारुणम्, हरितारुणं चारु बन्धनं यस्य सः हरितारुणचारुबन्धनः । "पलाशो हरितो हरित्" "अव्यक्तरागस्त्वरुणः" (अम०) । पुमान् चासौ कोकिलः पुंस्कोकिलः "वनप्रियः परभृतः कोकिलः पिक इत्यपि" (अम०) पुंस्कोकिलस्य शब्दः पुँस्कोकिलशब्दः कलश्चासौ पुँस्कोकिलशब्दः, तेन सूचितः कलपुँस्कोकिलशब्दसूचितः । चूतस्य प्रसवः चूतप्रसवः, नवश्चासौ चूतप्रसवः नवचूतप्रसवः ।

हिन्दी—हे कुसुमायुध, पुँस्कोकिल के मधुर शब्द से जिसका आविर्भाव सूचित होता है, ऐसा नीले और लाल बन्धन से (वृन्त) युक्त नूतन आम्र कुसुम इस समय तुम्हारे अभाव में किसका बाण बनेगा, कहो ? ॥ १४ ॥

अलिपङ्क्तिरनेकशस्त्वया गुणकृत्ये धनुषो नियोजिता ।
विरुतैः करुणस्वनैरियं गुरुशोकामनुरोदितीव माम् ॥ १५ ॥

अन्वयः—त्वया अनेकशः धनुषः गुणकृत्ये नियोजिता इयम् अलिपङ्क्तिः करुणस्वनैः विरुतैः गुरुशोकां माम् अनुरोदिति इव :

सं०—अलीति। त्वया अनेकशो बहुशो धनुषः कार्मुकस्य गुणकृत्ये मौर्वीकार्ये गुणवत्कर्मणि च नियोजिताधिकृतेयमलिपङ्क्तिः। करुणस्वनैर्दीनस्वनैर्विरुतैः कूजितैर्गुरुशोकां दुर्भरदुःखाम्। "गुरुस्तु गीष्पतौ श्रेष्ठे गुरौ पितरि दुर्भरे" इति शब्दार्णवः। मामनुरोदितीव। उपसर्गात्मकर्मकत्वम्। "रुदादिभ्यः सार्वधातुके" इतीडागमः।

शब्दार्थ:—त्वया = तुम्हारे द्वारा, अनेकश = अनेक बार, धनुषः = धनुष के, गुणकार्ये = प्रत्यञ्चारूप कार्य में, नियोजिता = नियोजित की गयी, इयम् = यह अलिपंक्तिः = भ्रमरश्रेणी, करुणस्वनैः = दीनस्वरवाले, विरुतैः = कूजनों द्वारा, गुरुशोकाम् = अत्यन्त दयनीय अवस्थावाली, माम् = मुझ रति को, अनुरोदिति इव = मानो अनुरोदन करती है।

सरलार्थं—भवता बहुशः कार्मुकस्य मौर्वीकार्ये नियोजिता इयं भ्रमरपङ्क्तिः करुणनिस्वनैरत्यन्तदुःखिताया रुदत्या ममानुरोदनं करोतीव।

व्या० स० कोश—गुणस्य कृत्यं गुणकृत्यम् तस्मिन्। "गुणौ मौर्व्यप्रधानयोः" (अम०)। अलीनां पंक्तिः अलिपङ्क्तिः "वीथ्यालिरावलिः पंक्तिः" (अम०)। करुणाः स्वनाः येषु तानि करुणस्वनानि तैः। गुरुः शोकः यस्या सा गुरुशोका, ताम्।

अलङ्कार—यहाँ 'इव' शब्द उत्प्रेक्षावाचक है अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

हिन्दी—हे पञ्चशर, तुम्हारे द्वारा अनेक बार कुसुमबाण की प्रत्यञ्चा के कार्य में आनेवाली यह भ्रमरपङ्क्ति करुणस्वर से कूजन करती हुई मानों तुम्हारे वियोग से अत्यन्त दुःखी होकर मेरा अनुरोदन-सी कर रही है।

प्रतिपद्य मनोहरं वपुः पुनरप्यादिश तावदुत्थितः।
रतिदूतिपदेषु कोकिलां मधुरालापनिसर्गपण्डिताम्॥ १६॥

अन्वयः—तावत्, पुनः, अपि, मनोहरं वपुः, प्रतिपद्य, उत्थितः सन् मधुरालापनिसर्गपण्डिताम्, कोकिलाम्, रतिदूतिपदेषु, आदिश।

सं०—प्रतिपद्येति। तावत् पुनरपि मनोहरं वपुः, शरीरं प्रतिपद्य प्राप्योत्थितः सन्। मधुरालापेषु प्रियोक्तिषु निसर्गपण्डितां स्वभावप्रगल्भां कोकिलां रतिदूतिपदेषु

सुरतदूतीस्थानेष्वादिश आज्ञापय। प्रगल्भानामेव दौत्याधिकार इति भावः। ङीबन्तस्यापि दूतीशब्दस्य छन्दोभङ्गभयाद् ह्रस्वः। "अपि माषं मषं कुर्याच्छन्दोभङ्गं त्यजेद्गिरम्" इति केचित्। "उणादयो बहुलम्" इति बहुलग्रहणाद् ह्रस्व इति वल्लभः।

शब्दार्थ:—तावत् = अब, पुनः अपि = फिर भी, मनोहरम् = सुन्दर, वपुः = शरीर, प्रतिपद्य = प्राप्त करके, उत्थितः = उठते हुए, मधुरालापनिसर्गपण्डिताम् = प्रिय भाषण में जो स्वभावतः चतुर है ऐसी, कोकिलाम् = कोयल को, रतिदूतिपदेषु = कामिनी और कामुक के मिलनरूप कार्य में, आदिश=आज्ञा करो।

सरलार्थः—हे काम, त्वं पूर्ववदेव पुनः अतिरम्यं शरीरमुपादाय उत्थितः सन् कामिनीकामुकयोः सुरतस्थानेषु स्वभावतो मधुरालापप्रगल्भां कोकिलाम् आज्ञापय।

व्या० स० कोश—मधुराश्च ते अलापाः मधुरालापाः। निसर्गात् पण्डिता निसर्गपण्डिता। मधुरालापेषु निसर्गपण्डिताः ताम् मधुरालापनिसर्गपण्डिताम्। "स्यादाभाषणमालापः" (अम०)। स्वरूपं च निसर्गश्च स्वभावः" (अम०)। रतेः दूती रतिदूती तस्याः पदानि रतिदूतिपदानि तेषु। यहाँ छन्दोभंग के भय से दूती शब्द में ह्रस्व इकार का प्रयोग हुआ।

हिन्दी—हे काम! तुम पहले के समान ही अपने अति सुन्दर रूप को धारण करके कामिनी और कामुक के परस्पर मिलन रूप कार्य में स्वभावतः मधुर बोलने वाली इस कोकिल को आज्ञा दो॥ १६॥

शिरसा प्रणिपत्य याचितान्युपगूढानि सवेपथूनि च।
सुरतानि च तानि ते रहः स्मर! संस्मृत्य न शान्तिरस्ति मे॥१७॥

अन्वयः—हे स्मर, ते शिरसा प्रणिपत्य याचितानि सवेपथूनि उपगूढानि च, तानि रहः सुरतानि च संस्मृत्य मे शान्तिः न अस्ति।

सं०—शिरसेति। हे स्मर। शरसा प्रणिपत्य याचितानि सवेपथूनि सकम्पानि। "ट्वितोऽथुच्" इत्यथुच्प्रत्ययः। सात्विकान्तरोपलक्षणमेतत्। "स्तम्भप्रलयरोमाञ्चाः स्वेदो वैवर्ण्यवेपथू। अश्रुवैस्वर्यमित्यष्टो सात्विका परिकीर्तिताः" इति। उपगूढान्यालिङ्गनानि च। नपुंसके भावे क्तः। तान्यनुभूतप्रकाराणि

रहः एकान्ते सुरतानि च संस्मृत्य मे शान्तिर्नास्ति। अत्र समानकर्तृकत्वं दुर्घटं समानक्रियापेक्षास्तीति कश्चित्।

शब्दार्थः—हे स्मर = हे कामदेव। ते = तुम्हारे द्वारा, शिरसा प्रणिपत्य = प्रणाम करके, याचितानि = की गई प्रार्थनाओं को, सवेपथूनि = कम्पनयुक्त, उपगूढानि च = और आलिङ्गनों को, तानि = उन सबको, रहः = एकान्त में, सुरतानि च = और कामक्रीड़ाओं को, संस्मृत्य = स्मरण करके, मे=मुझे शान्तिः= शान्ति, नास्ति = नहीं है।

सरलार्थः—हे काम, त्वया प्रथमं मामनुनेतुं शिरसा प्रणम्य कृतानि याचितानि, अनन्तरं प्रसन्नायां मयि सरागाण्यालिङ्गानि, तदनन्तरं च रहसि कृतानि सुरतानि च संस्मृत्य मम शान्तिर्नास्ति।

व्या० स० कोश=वेपथुना सहितानि सवेपथूनि, तानि। "अथ वेपथुः। कम्प." (अम०)। उपगूढानि = 'उप' उपसर्गपूर्वक ✓ गुह् + क्त। शन्तिः = "शमथस्तु शमः शान्तिः" (अम०)। यहाँ 'वेपथु' शब्द का प्रयोग सात्विक भावों के उपलक्षणरूप है। वे सात्विकभाव आठ प्रकार के हैं—

"स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्विकाः स्मृताः॥' इति।

हिन्दी—हे मदन, प्रथम तुम्हारे द्वारा (मेरे अनुनय के लिये) की गयी प्रार्थनाओं को, अनन्तर (मेरे प्रसन्न हो जाने पर) तुम्हारे द्वारा किये गये प्रेमपूर्ण आलिङ्गनों को, तथा उसके बाद (मेरे अनुरक्त होने पर) एकान्त में की गई कामक्रीड़ाओं को स्मरण करके मुझे शान्ति नहीं हो रही है॥ १७॥

रचितं रतिपण्डित ! त्वया स्वयमङ्गेषु ममेदमार्तवम्।
ध्रियये कुसुमप्रसाधनं तव तच्चारु वपुर्न दृश्यते॥ १८॥

अन्वयः—हे रतिपण्डित ! त्वया मम अङ्गेषु स्वयं रचितं आर्तवं कुसुमप्रसाधनम् इदं ध्रियते, तव तत् चारु वपुः न दृश्यते।

सं०—रचितमिति। हे रतिपण्डित रतिकुशल। त्वया ममाङ्गेषु अवयवेषु स्वयं रचितम्। ऋतुरस्य प्राप्त आर्तवं वासन्तम्। "ऋतोरण्" इत्यणप्रत्ययः।

कुसुमप्रसाधनं पुष्पाभरणमिदं ध्रियतेऽवतिष्ठते। "धृञ् अवस्थाने" इति धातोस्तौदादिकात् कर्तरि लट्। तव तत् प्रसाधकं चारु सुन्दरं वपुस्तु न दृश्यते।

शब्दार्थ:—हे रतिपण्डित = हे रतिकुशल, त्वया=तुमने, मम = मुझ रति के, अङ्गेषु = अङ्गों में, स्वयम् = अपने द्वारा, रचितम् = विहित, आर्तवम् = ऋतु का आविर्भाव, कुसुमप्रसाधनम् = पुष्पों का अलङ्कार, इदम् = यह, ध्रियते विद्यमान है (परन्तु) तव = तुम्हारा, तत् = वह, चारु = सुन्दर, वपुः = शरीर, न दृश्यते = नहीं दिखाई पड़ता।

सरलार्थ:—हे रतिविदग्ध, त्वया स्वयमेव ममाङ्गेषु शीरोऽलङ्कारकर्णाभरणरूपतां प्रापितमिदं नूतनं वसन्तपुष्पाभरणमद्यावधि तथैवाऽवतिष्ठते, किन्तु भवतस्तत् चारु शरीरं तु न दृश्यते।

व्या० स० कोश—रतौ पण्डितः रतिपण्डितः तत्सम्बुद्धौ हे रतिपण्डित! रचितम्=√ रच् प्रतियत्ने + क्त। आर्तवम्=ऋतुरस्य प्राप्त आर्तवम् "ऋतोरण्" इससे अण् प्रत्ययः, "तद्धितेष्व०" से आदिवृद्धि। चारु = "सुन्दरं रुचिरं चारु सुषमं साधु शोभनम्" (अम०)।

हिन्दी—हे रतिकुशल, मेरे अङ्गों में तुम्हारे द्वारा स्वयं किया गया यह अभिनव वसन्त पुष्पों का आभरण आज भी उसी प्रकार विद्यमान् है, परन्तु तुम्हारा वह सुन्दर शरीर नहीं दिखाई देता है॥ १८॥

विबुधैरसि यस्य दारुणैरसमाप्ते परिकर्मणि स्मृतः।
तमिमं कुरु दक्षिणेतरं चरणं निर्मितरागमेहि मे॥ १९॥

अन्वयः—दारुणैः विबुधैः यस्य परिकर्मणि असमाप्ते स्मृतः असि; तम् इमं दक्षिणेतरं मे चरणं निर्मितरागं कुरु, एहि।

सं०—विबुधैरिति। दारुणैः क्रूरैः। प्राणान्तिके कर्मणि नियोगादिति भावः। विबुधैर्देवैः। अनभिज्ञत्वं च ध्वन्यते। यस्य मच्चरणस्य परिकर्मणि प्रसाधने। "परिकर्म प्रसाधनम्" इत्यमरः। असमाप्ते सति स्मृतोऽसि तम् इमं दक्षिणेतरं वामं मे चरणं निर्मितरागं कुर्वेह्यागच्छ।

शब्दार्थ:—दारुणैः=अत्यन्त क्रूर, विबुधैः = देवों द्वारा, यस्य = जिस (पाँव) के, परिकर्मणि = प्रसाधन कर्म में, असमाप्ते = अपूर्ण रह जाने पर ही, स्मृतः

असि = तुम स्मरण किये गये हो। तम् = उस, इदम् = इस, दक्षिणेतरम्=बायें, मे चरणम् = मेरे चरण को, निर्मितरागम् = लक्षारस से रञ्जित, कुरु = करो, एहि = आ जाओ।

सरलार्थः—हे स्मर, स्नेहातिशयात् लाक्षारसेन मम चरणद्वयं रञ्जयितुं प्रवृत्तस्त्वं प्रसाधनकर्मणि असमाप्ते एव (दक्षिण चरणरञ्जनानन्तरं) दारुणदैवेन स्मृतोऽसि (पञ्चत्वं यातोऽसि) तस्मात् त्वरितमेवागत्य इमं मे वामचरणं लाक्षारसेनोपरञ्जय।

व्या० स० कोश—दारुणैः = दारुणं भीषणं भीमं भीष्मं घोरं भयानकम् (अम०)। विबुधैः="अमरा निर्जरा देवास्त्रिदशाः विबुधाः सुराः (अम०)। न समाप्तं तस्मिन् असमाप्ते। निर्मितरागम् = निर्मितः रागः यस्मिन् स निर्मितरागः, तम्। रज्यते अनेनेति रागः √ रञ्ज+घञ्।

हिन्दी—हे प्रिय, जिस (वाम चरण) के प्रसाधन कर्म के (महावर लगाने में) अपूर्ण रह जाने पर ही (अर्थात् दाहिने चरण में महावर लगाने के अनन्तर ही) तुम दारुण दैव के द्वारा याद किये गये हो (अर्थात् स्वर्ग चले गये हो) अतः तुम शीघ्र आकर मेरे इस बायें चरण को भी अलक्तक रस से रञ्जित कर दो ॥ १९ ॥

विशेष—परिकर्म = प्रसाधन, सजावट–'कृतावर पतिकर्मणम्' (श०२) ।१।

अहमेत्य पतङ्गवर्त्मना पुनरङ्काश्रयणी भवामि ते।
चतुरैः सुरकामिनीजनैः प्रिय यावन्न विलोभ्यसे दिवि ॥ २० ॥

अन्वयः—अहं पतङ्गवर्त्मन एत्य पुनः ते अङ्काश्रयणी भवामि, हे प्रिय, दिवि चतुरैः सुरकामिनीजनैः, यावत् न विलोभ्यसे।

सं०—अहमिति। अहं पतङ्गवर्त्मना शलभमार्गेण। अग्निप्रवेशेनेत्यर्थः। "पतङ्गः शलभे चाग्नौ मार्जारेऽर्के शरे खगे" इति वैजयन्ती। एत्यागत्य पुनस्तेऽङ्काश्रयणी उत्सङ्गवर्तिनी भवामि संप्रत्येव भविष्यामि ॥ "वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा" इदि लट्। हे प्रिय! दिवि स्वर्गे चतुरैः सुरकामिनीजनैः अप्सरोगणैर्यावन्न विलोभ्यसे विलोभयिष्यसे। "यावत् पुरानिपातयोर्लट्" इति लट्।

शब्दार्थः—अहं = मैं (रति), पतङ्गवर्त्मना = शलभ के मार्ग से अर्थात्

अग्निप्रवेश द्वारा, एत्य = आकर, पुनः = फिर तुम्हारे, अङ्काश्रयणी = गोद का आश्रय लेने वाली, भवामि = होती हूँ। हे प्रिय, दिवि = स्वर्ग में, चतुरैः = कामी, जनों को आकृष्ट करने में निपुण, सुरकामिनीजनैः = देवललनाओं द्वारा, यावत् = जब तक, न विलोभ्यसे = प्रलोभित नहीं किये जाओगे अर्थात् उनके वश में नहीं होओगे।

सरलार्थः—हे प्रिय ! अहं पुनरेव पावकमार्गाश्रयणेन त्वत्समीपमागत्य तवोत्सङ्गे स्थास्यामि, यावत् स्वर्गे चित्ताकर्षणनिपुणाभिरप्सरोभिरात्मवशं न नीयसे।

व्या० स० कोश—पतङ्गस्य वर्त्म पतङ्गवर्त्म तेन पतङ्गवर्त्मना "पतङ्गः शलभे चाग्नौ मार्जारेऽर्के शरे खगे" (वैजयन्ती)। "समौ पतङ्गशलभौ" (अम०)। अङ्कम् आश्रयतीति अङ्काश्रयणी। काम अस्ति आसां ता कामिन्यः, सुराणां कामिन्य सुरकामिन्यः, ताश्च ते जनाः सुरकामिनीजनाः, तैः सुरकामिनीजनैः। विलोभ्यसे = यहाँ 'यावत्' शब्द के प्रयोग से "यावत्पुरानिपातयोर्लट्" इस सूत्र से भविष्यदर्थ में लट् हुआ है।

हिन्दी—हे प्रिय ! मैं पतङ्ग के मार्ग से अर्थात् अग्नि-प्रवेश द्वारा शीघ्र ही तुम्हारे समीप आकर तुम्हारी गोद में बैठूंगी, जब तक कि स्वर्ग की चतुर देवाङ्गनाएँ तुम्हें अपने वश में नहीं कर पाती हैं।

विशेष—पतङ्गवर्त्म—पतङ्गवद्वह्निमुखं विविक्षुः (कु० ३।६४)॥ २०॥

मदनेन विनाकृता रतिः क्षणमात्रं किल जीवितेति मे।
वचनीयमिदं व्यवस्थितं रमण ! त्वामनुयामि यद्यपि॥ २१॥

अन्वयः—हे रमण ! त्वाम् अनुयामि यद्यपि, किन्तु रतिः मदनेन विनाकृता क्षणमात्रं जीविता किल इति इदं वचनीयं मे व्यवस्थितम्।

सं०—मदनेनेति। हे रमण ! त्वामनुयामि यद्यप्यनुगमिष्याम्येव। "वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा" इति लट्। "यद्यपीत्यवधारणे" इति केशवः। किन्तु रतिर्मदनेन विनाकृता। वियोजिता सति इत्यर्थः। सुप्सुपेति समासः। क्षणमात्रं जीविता किल इतीदं वचनीयं निन्दा में मम व्यवस्थितं स्थिरमभूत्।

शब्दार्थः—हे रमण ! = हे प्रिय नाथ !, त्वाम् = तुमको, अनुयामि = अनुगमन करूंगी, यद्यपि = ही, किन्तु, रतिः = कामवधू, मदनेन = कामदेव से,

विनाकृता = अलग होती हुई, क्षणमात्रम् = कुछ समय के लिये, जीवित है, किल = ही, इति = ऐसा, वचनीयम् = निन्दा = लोकापवाद, व्यवस्थितम् = स्थिर हो गया।

सरलार्थः—हे प्रियतम ! यद्यप्यहं मृतं त्वां सद्य एवानुमरिष्यामि तथापि मदनावियुक्ता रतिः क्षणमात्रं तु जीवितेति लोकापवादस्तु स्थिरमेवाऽभूत् ।

व्या० स० कोश—अनुयामि–यहाँ "वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा" सूत्र से लट् हुआ है। यद्यपि = ही "यद्यप्यवधारणे" (केशव)। विना कृता इति विनाकृता। जीविता = ✓ जीव प्राणधारणे + निष्ठा क्त + टाप्। वचनीयम् = वक्तुं योग्यं वचनीयम्—वच + अनीयर्। व्यवस्थितम् = विशेषेण अवस्थितं व्यवस्थितम्। 'सुप्सुपा' से समास।

हिन्दी—हे प्रियवल्लभ, मैं शीघ्र तुम्हारा अनुगमन करूँगी, परन्तु कामदेव के विना रति क्षणमात्र के लिये जीवित थी ही–ऐसा लोकापवाद तो चिरस्थायी बन ही गया।

विशेष—वचनीयम्=कलङ्क, निन्दा–न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते (कु०५।८२)। 'भवति योजयितुर्वचनीयता' (पंच० १।७५) ॥ २१ ॥

क्रियतां कथमन्त्यमण्डनं परलोकान्तरितस्य ते मया।
सममेव गतोऽस्यतर्कितां गतिमङ्गेन च जीवितेन च ॥ २२ ॥

अन्वयः—परलोकान्तरितस्य, ते मया अन्त्यमण्डनं कथं क्रियताम्, अङ्गेन जीवितेन च समम् एव अतर्कितां गतिम् गतः असि।

सं०—क्रियतामिति। परलोकेऽन्तरितस्य व्यवहितस्य मृतस्येत्यर्थः। ते तव मया अन्त्यमण्डनं कथं केन प्रकारेण क्रियताम्। क्रियतामित्यत्र कामचारे लोट् बोध्यः। द्रुतदग्धस्य ते यथेच्छमण्डनमपि न सम्भवतीत्यर्थः। कुतः। अङ्गेन च जीवितेन च समं सहैव अतर्किताम् अविचारितां गतिं गतोऽसि। इह मृतशरीरमपि नास्ति कस्य मण्डनमिति भावः।

शब्दार्थः—परलोकान्तरितस्य = परलोक को प्राप्त हुए, ते=तुम्हारे, मया= मुझ रति के द्वारा, अन्त्यमण्डनम् = मृत शरीर की सजावट को, कथं = किस प्रकार से, क्रियताम् = कर सकती हूँ (यतः = क्योंकि) अङ्गेन = शरीर से,

जीवितेन च = प्राणधारण से, (भस्म होने के कारण) समम् एव = एक साथ ही, अतर्किताम् = अविचारित, गतिम् = दशा को, गतः असि = प्राप्त हुए हो।

सरलार्थः—हे प्रिय ! स्वर्गङ्गतस्य तव प्रेतशरीरालंकरणमपि अहं केन प्रकारेण कर्तुं शक्नोमि ? यतो हि सर्वेषां मृतप्राणिनां शरीरमात्रं तु अवशिष्यते परं त्वं तु भस्मीभूतत्वेन शरीरप्राणाभ्यां सममेव विनष्टोऽसि।

व्या० स० कोश—परश्चासौ लोकः परलोकः, अनन्तरं सञ्जातम् अस्य अन्तरितः, परलोके अन्तरितः तस्य परलोकान्तरितस्य। अन्त्यमण्डनम् = अन्ते भवम् अन्त्यम् "दिगादिभ्यो यत्" सूत्र से यत् प्रत्ययः। अन्त्यं च तत् मण्डनं अन्त्यमण्डनम् (क० धा०)।

हिन्दी—परलोक को प्राप्त हुए तुम्हारे मृत शरीर को अन्तिम बार सजा भी कैसे सकती हूँ क्योंकि तुम तो (भस्मीभूत होने के कारण) शरीर और प्राणों से एक साथ ही विनाश को प्राप्त हो गये हो।

विशेष—अन्तरित = अदृश्य, तिरोहित, ओझल—पादपान्तरित विश्वस्तामेनां पश्यामि (श० १)। 'अन्तरिते तस्मिन् शबरसेनापतौ' (काद०) ॥२२॥

ऋजुतां नयतः स्मरामि ते शरमुत्सङ्गनिषण्णधन्वनः।
मधुना सह सस्मितां कथां नयनोपान्तविलोकितं च यत् ॥ २३ ॥

अन्वयः—शरम् ऋजुतां नयतः उत्सङ्गनिषण्णधन्वनः ते मधुना सह सस्मितां कथां यत् नयनोपान्तविलोकितं च, यत् स्मरामि।

सं०—ऋजुतामिति। शरमृजुतामार्जवं नयत उत्सङ्गे निषण्णमङ्कगतं धनुर्यस्य तस्य। "धनुषश्च" इत्यनङादेशः। ते तव मधुना वसन्तेन सह। "मधुर्दैत्ये वसन्ते च चैत्रे च" इति विश्वः। सस्मितां कथामालापं तथा यन्नयनोपान्तविलोकितमपाङ्गवीक्षणम्। त इत्यनुषङ्गः। तच्च स्मरामि।

शब्दार्थः—शरम् = बाण की, ऋजुताम् = वक्रता को, नयतः = दूर करते हुए, उत्सङ्गनिषण्णधन्वनः = गोद में कुसुम बाण को रखने वाले, ते = तुम्हारे, मधुना सह = वसन्त के साथ, सस्मिताम्=कुछ हंसते हुए, कथाम् = वार्तालाप को, यत् = जो, नयनोपान्तविलोकितं च = और नेत्र के अपाङ्ग की ओर दृष्टि डालना, तच्च स्मरामि = याद करती हूँ।

सरलार्थः—हे प्रिय, शरस्य वक्रतां दूरीकर्तुं कुसुमचापं स्वोत्सङ्गे निधाय वसन्तेन सहालापं कुर्वतस्तन्मध्ये तव सनेहं नेत्रोपाङ्गेन मां विक्षणं मुहुर्मुहुः स्मरामि।

व्या० स० कोश—ऋजुताम् = ऋजोभावः ऋजुता ताम्। उत्संगे निषण्णम् उत्संगनिषण्णम्, तत् धनुर्यस्य स उत्सङ्गनिषण्णधन्वा तस्य उत्सङ्गनिषण्णधन्वनः। नयनयोः उपान्तौ नयनोपान्तौ, ताभ्यां विलोकितं नयनोपान्तविलोकितं तत्। सह—'सार्धं तु साकं सत्रा समं सह' (अम०)।

हिन्दी—बाण की वक्रता को दूर करने के लिए गोद में धनुष को रखते हुए वसन्त के साथ बातचीत करते समय तुम मुझे स्नेहपूर्ण दृष्टि से देख लेते थे, वह सब मैं स्मरण करती हूँ अर्थात् उसे कैसे भूल सकती हूँ ॥ २३ ॥

क्व नु ते हृदयङ्गमः सखा, कुसुमायोजितकार्मुको मधुः।
न खलूग्ररुषा पिनाकिना, गमितः सोऽपि सुहृद्गतां गतिम् ॥२४॥

अन्वयः—हृदयङ्गमः ते सखा कुसुमायोजितकार्मुकः मधुः क्व नु। अथवा सः अपि उग्ररुषा पिनाकिना सुहृद्गतां गतिं न गमितः खलु।

सं०—क्वेति। हृदयं गच्छतीति हृदयङ्गमो हृद्यः। खच्प्रकरणे "गमेः सुप्युपसंख्यानम्" इति खच्प्रत्ययः। "अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्" इति मुमागमः। ते तव सखा कुसुमैरायोजितमारचितं कार्मुकं येन कार्मुकनिर्माता मधुर्वसन्तः क्व नु क्व वा। गत इति शेषः। अथवा सोऽप्युग्ररुषा तीव्रकोपेण पिनाकिनेश्वरेण सुहृदा मदनेन गतां प्राप्तां गतिम्। भस्मतामित्यर्थः। न गमितः खलु न प्रापितः किम्। "जिज्ञासानुनये खलु" इत्यमरः।

शब्दार्थः—हृदयङ्गमः = प्रिय, ते = तुम्हारा, सखा = मित्र, कुसुमायोजितकार्मुकः=पुष्पों से धनुष की रचना करनेवाला, मधुः = वसन्त, क्व नु = कहाँ है? अथवा, स अपि = वह वसन्त भी, उग्ररुषा = तीव्र कोप वाले, पिनाकिना = शिवजी के द्वारा, सुहृद्गताम् = मित्र काम को प्राप्त हुई, गतिम् = स्थिति को, न गमितः खलु = प्राप्त तो नहीं हो गया है।

सरलार्थः—हे स्मर, तव प्रिय सुहृत् वसन्तोऽप्येदानीं तु न दृश्यते, यः येन कुसुमायुधं विरच्य तवोपकारः कृत आसीत्। तमपि दृष्ट्वा मम दुःखं किञ्चित् शाम्येत्। किं सोऽपि हरकोपाग्निना एव भस्मत्वं तु न गतः?

व्या० स० कोश—हृदयं गच्छतीति हृदयङ्गमः। कुसुमै आयोजितं कुसुमायोजितं। कर्मणे प्रभवतीति कार्मुकम् कुसुमायोजितं कार्मुकं येन सः कुसुमायोजितकार्मुकः। उग्रा रुट् यस्य स उग्ररुट् तेन उग्ररुषा। पिनाकिना—पिनाको अस्यास्तीति पिनाकी तेन पिनाकिना "पिनाकोऽजगवं धनुः" (अम०)। "मृत्युञ्जयः कृत्तिवासाः पिनाकी प्रमथाधिपः" (अम०)।

हिन्दी—कुसुम धनुष की रचना करने वाला तुम्हारा प्रिय मित्र वसन्त भी तो दिखाई नहीं पड़ता, वह कहाँ चला गया? (प्रियवियुक्ता मैं यदि उसे भी देख लेती तो कुछ दुःख कम हो जाता) अथवा वह भी तो कहीं तुम्हारे जैसे शिव की कोपाग्नि से भस्मता को तो प्राप्त नहीं हो गया?॥ २४॥

अथ तैः परिदेविताक्षरैर्हृदये दिग्धशरैरिवाहतः।
रतिमभ्युपपत्तुमातुरां मधुरात्मानमदर्शयत्पुरः॥ २५॥

अन्वयः—अथ तै परिदेवताक्षरैः हृदये दिग्धशरैः इव आहताः मधुः आतुरां रतिम् अभ्युपत्तुम्, आत्मानं पुरः अदर्शयत्।

सं०—अथेति। अथ तैः परिदेविताक्षरैर्विलापवचनैर्हृदये दिग्धशरैर्विषलिप्तमुखैः शरैरिवाहतः सन्। "विषाक्ते दिग्धलिप्तकौ" इत्यमरः। मधुर्वसन्त आतुरामापन्नां रतिमभ्युपपत्तुमनुग्रहीतुम्। आश्वासयितुमित्यर्थः। "अभ्युपपत्तिरनुग्रहः" इत्यमरः। आत्मानं पुरोऽदर्शयत्। आविरभूदित्यर्थः॥ २५॥

शब्दार्थः—अथ = अनन्तर, तैः = पूर्वोक्त, परिदेवताक्षरैः = विलाप वाक्यों से, हृदये = हृदय में, दिग्धशरैः इव = जैसे विष से लिप्त अग्र भाग वाले वाणों से, आहतः = घायल हुआ, मधुः = वसन्त, आतुराम् = शोकग्रस्त, रतिम् = रति को, अभ्युपपत्तुम् = अनुग्रहीत करने के लिए, आत्मानम् = अपने को, पुरः = सामने, अदर्शयत् = दिख रहा था।

सरलार्थः—अनन्तरमेवम्भूतैः कामप्रियाविलापवाक्यैः विषलिप्तैः शरमुखैः इव हृदये आहतः सन् वसन्तः पतिवियोगेन दुःखितां रतिमाश्वासयितुं सशरीरमात्मानं तदग्रे दर्शयामास।

व्या० स० कोश—परिदेवितस्य अक्षराणि परिदेवताक्षराणि तैः। "विलापः परिदेवनम्" (अम०)। दिग्धाश्च ते शराः दिग्धशराः तैः। "विषाक्ते दिग्धलिप्तकौ" (अम०)। "अभ्युपपत्तिरनुग्रहः" (अम०)।

अलङ्कार—उत्प्रेक्षा।

हिन्दी—तदनन्तर उस प्रकार विषलिप्त बाणों जैसे रति के विलाप वचनों से आहत हुआ वसन्त शोकातुर काम वधू को आश्वासन देने के लिए स्वयं उसके सामने प्रकट हुआ॥ २५॥

तमवेक्ष्य रुरोद सा भृशं स्तनसम्बाधमुरो जघान च।
स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते॥ २६॥

अन्वयः—सा, तम्, अवेक्ष्य, भृशं रुरोद स्तनसम्बाधम्, उरोः जघान च; हि स्वजनस्य अग्रतः दुःखं विवृतद्वारं इव उपजायते।

सं०—तामिति। सा रतिस्तं मधुमवेक्ष्य दृष्ट्वा भृशं रुरोद। स्तनौ संबाध्य स्तनसंबाधम्। "परिक्लिश्यमाने च" इति णमुल्। उरो जघान ताडितवती च। तथाहि। स्वजनस्याग्रतो दुःखं विवृतमपसारितं द्वारं कपाटं यस्य तदिवोपजायत आविर्भवति। उच्छृङ्खलं प्रवर्तत इत्युत्प्रेक्षाभिप्रायः।

शब्दार्थः—सा = रति, तम् = वसन्त को, अवेक्ष्य = देखकर, भृशम् = अत्यधिक, रुरोद = रोने लगी। स्तनसम्बाधम् = स्तनों पर चोट पहुँचा कर, उरः = वक्षस्थल को, जघान = ताडन करने लगी। हि = क्योंकि, स्वजनस्य = आत्मीय जन के, अग्रतः = सामने, दुःखम् = व्यथा, विवृतद्वारमिव = खुले हुए द्वार के समान, उपजायते = निकलता है।

सरलार्थः—रति वसन्तमवलोक्य भृशं रोदनं चकार स्तनौ सम्बाध्य कराभ्यां वक्षस्थलं च ताडितवती। यतः यथा अन्तःप्रदेशे विद्यमानं वस्तु विघटितकपाटे सति सहसा निर्गच्छति तथा मनः स्थितं दुःखमपि आत्मीयजनं दृष्ट्वा प्रलापाश्रुप्रवाहादिरूपेण प्रस्फुटितं भवति।

व्या० स० कोश—अवेक्ष्य = "अव"√इक्ष्+क्त्वा+ल्यप्। स्तनसम्बाधम् = स्तनौ सम्बाध्य इति स्तनसम्बाधम्। 'परिक्लिश्यमाणे च' इस सूत्र से णमुल्, "कृन्मेजन्त०" से अव्ययत्व। अग्रतः = अग्र+सप्तम्यर्थ में तस्। विवृते द्वारे यस्य तत् विवृतद्वारम्।

हिन्दी-रति वसन्त को देखकर अत्यधिक रोने लगी और छाती पीटने लगी। क्योंकि जिस प्रकार चारों ओर से अवरुद्ध पदार्थ रास्ता खुल जाने पर वेग से

बाहर निकलने लगता है, उसी प्रकार आत्मीय जन को देखकर मनःस्थित दुःख भी अश्रु आदि के रूप में बाहर उमड़ पड़ता है ॥ २६ ॥

इति चैनमुवाच दुःखिता सुहृदः पश्य वसन्त! किं स्थितम् ।
तदिदं कणशो विकीर्यते पवनैर्भस्म कपोतकर्बुरम् ॥ २७ ॥

अन्वयः—दुःखिता सा एनम् इति उवाच हे वसन्त ! पश्य, सुहृदः किं स्थितम् ? तत् इदं कपोतकर्बुरं भस्म पवनैः कणशः विकीर्यते ।

सं०—इतीति । दुःखम् अस्याः सञ्जातं दुःखिता । सञ्जातदुःखेत्यर्थः । तारकादित्वादितच् । सा रतिः एनं वसन्तमित्युवाच च । चकारः पूर्वोक्तसमुच्चयार्थः । हे वसन्त पश्य सुहृदस्त्वत्सखस्य किं स्थितं किमुपस्थितं तदिदं कपोतकर्बुरं पारावतशबलं कणशश्चूर्णीभूतम । अल्पार्थाच्छस्प्रत्ययः । भस्म पवनैर्विकीर्यते विक्षिप्यते । पश्य भस्मीभूतस्ते सुहृदित्यर्थः ।

शब्दार्थः—दुःखिता सा = शोकग्रस्ता वह रति, एनम् = इस वसन्त को, इति = इस प्रकार, उवाच = बोली । हे वसन्त, पश्य = देखो, सुहृदः = मित्र की, किम् स्थितम् = क्या दशा हुई है ? तत् = वह, इदम् = यह, कपोतकर्बुरम् = कबूतर के समान रंगवाली, भस्म = धूलि को, पवनैः = वायु के झोंकों से, कणशः= कण-कण करके, विकीर्यते = उड़ायी जा रही है ।

सरलार्थः—अतिपीडिता सा रतिः वसन्तमुवाच । हे वसन्त, पश्य, तव मित्रस्य कामस्य का दशा सञ्जातेति । तस्य शरीरान्तस्येदं पारावतशबलं भस्म वायुभिः लवशः इतस्ततो विक्षिप्यते ।

व्या० स० कोश—दुःखं सञ्जातं यस्याः सा दुःखिता, सुहृदः = शोभनं हृदयं यस्य स सुहृत् तस्य सुहृदः, कपोत इव कर्बुरं कपोतकर्बुरं, तत्, 'पारावतः कलरव कपोतः' (अम०) । 'चित्रं किर्मीरकल्माषशबलैताश्च कर्बुरे' (अम०) ।

हिन्दी—दुःख से अत्यन्त व्याकुल रति उस वसन्त से बोली—हे मधो, देखो—तुम्हारे प्रिय मित्र काम को क्या दशा हो गयी । कबूतर के समान शबल उसके शरीर की भस्म को हवा इधर-उधर उड़ा रही है ॥ २७ ॥

अयि सम्प्रति देहि दर्शनं स्मर ! पर्युत्सुक एष माधवः ।
दयितास्वनवस्थितं नृणां न खलु प्रेम चलं सुहृज्जने ॥ २८ ॥

अन्वयः—अयि स्मर ! सम्प्रति दर्शनं देहि, एष माधवः पर्युत्सुकः, अस्ति, नृणां दयितासु प्रेम अनवस्थितं, सुहृज्जने प्रेम तु न चलं खलु ।

सं०—अयीति । अयि स्मर ! सम्प्रति दर्शनं देहि । एष माधवो वसन्तः पर्युत्सुकस्त्वद्दर्शनोत्कण्ठितः । त्वामप्यनादृतवतोऽस्य को माधव इत्याशङ्क्याह—नृणां पुरुषाणां दयितासु प्रेम अनवस्थितमस्थिरम् । चलमित्यर्थः । सुहृज्जने प्रेम तु न चलं खलु ।

शब्दार्थः—अयि स्मर ! = हे कामदेव, सम्प्रति = अब तो, दर्शनं = दर्शन, देहि = दो, एषः = यह, माधवः = वसन्त, पर्युत्सुकः = उत्कण्ठित हो रहा है। नृणाम् = मनुष्यों की, दयितासु = प्रियाओं में, प्रेम = प्रीति, अनवस्थितम् = अस्थिर होती है (परन्तु) मित्रजने = प्रिय मित्र में, प्रेम तु = स्नेह तो, न चलं खलु = अस्थिर नहीं होता ।

सरलार्थः—हे काम, एष त्वत्सखा वसन्तस्त्वद्दर्शनार्थमुत्कण्ठितोऽस्ति, सम्प्रति दर्शनं देहि । यतः पुरुषाणां स्वप्रियासु प्रेम चञ्चलं भवति परं स्वसुहृज्जनेषु कृता मैत्री तु स्थिरैव, तस्मात् तव सख्युरुपेक्षा कर्तुं त्वं नार्हसि ।

व्या० स० कोश—दर्शनम् = √ दृश् धातु से ल्युट्—"युवोरनाकौ" सूत्र से अनादेश हुआ । प्रेम—"प्रेमा ना प्रियता हार्दं प्रेम स्नेहः" (अम०) । सुहृदश्चासौ जनः सुहृज्जनस्तस्मिन् सुहृज्जने । चलम् = "चलं लोलं चलाचलम्" (अम०) ।

हिन्दी—हे स्मर, अब दर्शन दो । तुम्हारा यह सखा वसन्त तुम्हें देखने के लिए उत्कण्ठित है । (तुम मेरी उपेक्षा तो कर सकते हो पर वसन्त की नहीं) क्योंकि पुरुषों का स्त्रियों के प्रति प्रेम चञ्चल होता है परन्तु अपने बन्धुजन के प्रति चञ्चल नहीं होता ॥ २८ ॥

इदृशाः सुहृदः कति न सन्तीत्याशङ्क्य न कोऽपीत्याह—

अमुना ननु पार्श्ववर्तिना जगदाज्ञां ससुरासुरं तव ।
विसतन्तुगुणस्य कारितं धनुषः पेलवपुष्पपत्रिणः ॥ २९ ॥

अन्वयः—पार्श्ववर्तिना, अमुना, ससुराऽसुरं जगत् विसतन्तुगुणस्य पेलवपुष्पपत्रिणः तव धनुषः आज्ञां कारितं ननु ।

सं०—अमुनेति । ननु मदन । पार्श्ववर्तिना सहचरेणामुना वसन्तेन ससुरासुरं सुरासुरसहितं जगद्बिसतन्तुगुणस्य मृणालसूत्रमौर्वीकस्य पेलवानि पुष्पाण्येव पत्रिणो बाणा यस्य तस्य तव धनुष आज्ञां कारितम् । जगदाज्ञा कारितेत्यर्थः । "हृक्रोरन्यतरस्याम्" इति जगतः कर्मत्वम् ।

शब्दार्थः—हे मदन, पार्श्ववर्तिना = समीपवर्ती अर्थात् सहचर, अमुना = इस वसन्त के द्वारा, सुराऽसुरसहितं = देवों और असुरों सहित, जगत् = लोक, बिसतन्तुगुणस्य = मृणाल तन्तु की प्रत्यञ्चावाले, पेलवपुष्पपत्रिणः = कोमल पुष्पबाणवाले, तव = आपके, धनुषः = धनुष की; आज्ञाम् = आज्ञा को, कारितं ननु = करने वाले हैं ?

सरलार्थः—त्वत्सहचरेण वसन्तेनैव सदेवदानवोऽयं लोक तव बिसतन्तुमौर्वीकस्यातिमृदुलकुसुमबाणस्य धनुषः वशं नीतः इति न निश्चयेन जानीहि अतो वसन्ताल स्वदर्शनमश्यं दातव्यमिति भावः ।

व्या० स० कोश–पार्श्ववर्तिना = पार्श्वे वर्तते तच्छीलः पार्श्ववर्ती तेन पार्श्ववर्तिना । सुराश्च असुराश्च सुराऽसुराः तैः सहितं ससुराऽसुरैः । बिसस्य तन्तवः बिसतन्तवः ते एव गुणाः यस्य तत् बिसतन्तुगुणं, तस्य बिसतन्तुगुणस्य । पेलवानि पुष्पाणि एव पत्रिणः यस्य तत् पेलवपुष्पपत्रि, तस्य पेलवपुष्पपत्रिणः ।

हिन्दी—प्रिय सहचर वसन्त के कारण ही देव-दानव सहित यह सम्पूर्ण जगत् बिसतन्तुरूप प्रत्यञ्चावाले एवं कोमल पुष्पबाणवाले तुम्हारे चाप के वशीभूत हुआ है (अतः उपकारक के प्रति दर्शन देना सर्वथा उचित है, यह भाव है) ॥ २९ ॥

गत एव न ते निवर्तते स सखा दीप इवाऽनिलाहतः ।
अहमस्य दशेव पश्य मामविषह्यव्यसनेन धूमिताम् ॥ ३० ॥

अन्वयः—स ते सखा अनिलाहतः दीपः इव गतः एव, न निवर्तते, अहम् अस्य दशा इव तिष्ठामि, अविषह्यव्यसनेन धूमितां मां पश्य ।

सं०—गत इति । स ते सखानिलाहतो वायुताडितो दीप इव गत एव न निवर्तते । अहमस्य दीपायमानस्य दशा इव वर्तिरिव । तिष्ठामीति शेषः । "दशा वर्ताववस्थायां वस्त्रान्ते स्युर्दशा अपि" इति विश्वः । कुतः । अविषह्यव्यसनेन सोढुमशक्यदुःखप्रकर्षेण धूमितां सञ्जातधूमां मां पश्य । धूमवत्त्वान्नष्टदीपदशासाम्यं धूमश्च व्यसनमेवेत्यर्थः ।

शब्दार्थः—स = वह, ते = तुम्हारा, सखा = सुहृद् काम, अनिलाहतः = वायु से बुझे हुए, दीप इव = दीपक के समान, गत एव = चला ही गया, न निवर्तते = नहीं लौटता है, अहम् = मैं रति, अस्य = कामदेव को, (अर्थात् निर्वापित दीपक की) दशा इव = वर्तिका के समान (तिष्ठामि = स्थित हूँ), अविषह्यव्यसनेन = दुःसह दुःख से, धूमितां = धूमिल हुई, माम् = मुझ रति को, पश्य देखो ।

सरलार्थः—हे वसन्त, यद्येवं प्रियजने त्वयि समुत्सुके सत्यपि त्वत्सखा कामो दर्शनं न ददाति, तस्मादेनं वातनिर्वापितो दीपक इव सर्वथा विलुप्तदर्शन जानीहि, अहञ्च दुस्सहदुःखेन धूमवद् मलिना तस्य निर्वापितदीपस्य वर्ति इव तिष्ठामीति भावः ।

व्या० स० कोश—अनिलेन आहतः अनिलाहतः दशा = 'दशा वार्तावस्थायां वस्त्राञ्ते स्युर्दशा अपि' (विश्व०)। अविषह्यं च तत् व्यसनम् अविषह्यव्यसनम्, तेन ।

अलङ्कार—'दीप इव' यहाँ उपमालङ्कार है ।

हिन्दी—हे वसन्त, तुम्हारा प्रिय मित्र काम वायु से बुझे हुए दीपक के समान सर्वथा दुर्लभ अदर्शन हो गया है इसलिए नहीं लौट रहा है । मुझे उस बुझे हुए दीपक की असह्य शोकरूपी धूएँ से मलीन वर्तिका जानो ।। ३० ।।

विधिना कृतमर्धवैशसं ननु मां कामवधे विमुञ्चता ।
अनपायिनि संश्रयद्रुमे गजभग्ने पतनाय वल्लरी ।। ३१ ।।

अन्वयः—ननु कामवधे मां विमुञ्चता विधिना अर्धवैशसं कृतम्, अनपायिनि संश्रयद्रुमे गजभग्ने सति वल्लरी पतनाय भवति ।

सं०—विधिनेति । ननु वसन्त कामवधे मदनवधे मां विमुञ्चता वर्जयता । अमारयतेत्यर्थः । विधिना दैवेन । विशसति हिनस्तीति विशसो घातुकः । पचाद्यच् । विशसस्य कर्म वैशसम् । युवादित्वादण्प्रत्ययः । अर्धवैशसमर्धवधः कृतम् । "अर्धो वा एष आत्मनो यत्पत्नी" इति श्रुतेः । पत्युः स्वस्य चाश्रयाश्रयिभूतयोरेकपदार्थत्वाभिप्रायेणार्धोक्तिः । तथा चैकदेशवधे देशान्तरस्यापि वधनियमनान्मामपि विधिरघ्नन्नेव हतवानिति तात्पर्यम् । एतदेवोपपादयति—अनपायिनी

BVBSSMV

अनपायित्वं विश्वस्ते संश्रयद्रुम आश्रयवृक्षे गजभग्ने सति वल्लरी लता पतनाय भवति इति शेषः। पतितुमेव सालमित्यर्थः। "तुमर्थाच्च भाववचनात्" इति चतुर्थी।

शब्दार्थः—ननु = हे वसन्त, कामवधे = मदन का वध करने में, माम् = मुझे, विमुञ्चता = छोड़ते हुए, विधिना = दैव के द्वारा, अर्धवैशसम् = आधा वध, कृतम् = किया गया है। (परन्तु) अनपायिनि = विनाश को अप्राप्त, संश्रयद्रुमे = आश्रय रूप वृक्ष के, गजभग्ने सति = हाथी के द्वारा नष्ट कर देने पर, वल्लरी = लता, पतनाय = नाश के लिए ही होती है, अर्थात् आश्रय के नाश होने पर आश्रित पदार्थ भी अवश्य नष्ट हो जाता है।

सरलार्थः—ममार्द्धाङ्गं कामं मारयता विधिना मां वर्जयता अर्धहिता एव कृता, किन्तु आश्रयभूते द्रुमे हस्तिना भग्ने सति तदाश्रयिभूता लता अपि अवश्यं पतत्येव। अतो अहमपि मृतेवेति भावः।

व्या० स० कोश—कामस्य वधः कामवधः तस्मिन् कामवधे। आर्धवैशसम् = विशसति = हिनस्तीति विशसः, विशसस्य कर्म वैशसम्, अर्धं च तत् वैशसम् अर्ध वैशसम्। न अपायः अनपायः स अस्य अस्तीति अनपायी तस्मिन् अनपायिनि। संश्रयस्य द्रुमः संश्रयद्रुमः तस्मिन् संश्रयद्रुमे। गजमाने = गजेन भग्नः गजभग्नः तस्मिन् गजभग्ने। "मतङ्गजो गजो नागः कुञ्जरो वारणः करी" (अमर०)।

हिन्दी—हे वसन्त, मुझे छोड़कर मेरे अर्द्धाङ्ग पति का वध करने वाले विधि के द्वारा आधा वध ही हुआ है, परन्तु जब आश्रयभूत वृक्ष को हाथी ने उखाड़ दिया तो उसके आश्रित लता भी अवश्य विनाश को प्राप्त होगी। (क्योंकि आश्रय के विनष्ट होने पर आश्रयी का भी नाश अवश्यम्भावी है)।

विशेष—वैशसम् = वध, हत्या = उत्त० ४।७४, ६।४०।

अनपायिन्-क्षति रहित, स्थिर—'प्रसादाभिमुखे तस्मिन् श्रीरासीदनपायिनी' (रघु० १७।४६)॥ ३१॥

तदिदं क्रियतामनन्तरं भवता बन्धुजनप्रयोजनम्।
विधुरां ज्वलनातिसर्जनान्ननु मां प्रापय पत्युरन्तिकम्॥ ३२॥

अन्वयः—तत् अनन्तरं भवता इदं बन्धुजनप्रयोजनं क्रियतां। ननु विधुरां मां ज्वलनाऽतिसर्जनात् पत्युः अन्तिकं प्रापय।

सम्प्रत्यनन्तरकर्तव्यं प्रार्थयते—

सं०—तदिति। तत्तस्मात्कारणादुक्तप्रकारेण। अन्यथापि मरणस्यावश्यभावादित्यर्थः। अनन्तरं भवतेदं वक्ष्यमाणं बन्धुजनप्रयोजनं बन्धुकृत्यं क्रियताम्॥ प्रार्थनायां लोट्॥ तदेवोपदिशति—ननु वसन्त। मधुरां विवशां मां ज्वलनातिसर्जनादग्निदानात् पत्युः अन्तिकं प्रापयः अग्निप्रवेशनं कारयेत्यर्थः।

शब्दार्थः—तत्=इस प्रकार मरण न होने के कारण, अनन्तरम्=पश्चात्, (अब) भवता=तुम, इदम्=इस, बन्धुजनप्रयोजनम्=प्रिय मित्र के कार्य को, क्रियताम्=करो। ननु=वसन्त, विधुराम्=विवश हुई, माम्=मुझ रति को, ज्वलानातिसर्जनात्=अग्नि प्रज्वलित करके, पत्युः=स्वामी के, अन्तिकम्=समीप, प्रापय=पहुँचा दो।

सरलार्थः—इत्थं विधि प्रतिकूलत्वेन सहमरणाभावत् अधुनाऽपि भवान् प्रियजनकृत्यं करोतु, हे मधो! अग्निप्रवेशोपकरणानि सम्पाद्य विवशां मां भर्तुरन्तिकं प्रापय। एतदेव बन्धुकृत्यमस्मीति भावः।

व्या० स० कोश—बन्धुश्चासौ जनः बन्धुजनः, तस्य प्रयोजनम् बन्धजनप्रयोजनम्। क्रियताम्—प्रार्थनार्थ में कर्म में लोट् हुआ है। ज्वलयतीति ज्वलनः, तस्मै अतिसर्जनं ज्वलनातिसर्जनम् तस्मात् ज्वलनातिसर्जनात्। अन्तकम्= "उपकण्ठाऽन्तिकाऽभ्यर्णाऽभ्यग्रा अप्यभितोऽव्ययम्" (अमर०)।

हिन्दी—इस प्रकार मेरा सहमरण न होने पर अब तुम अपने प्रिय बन्धु का प्रयोजन पूर्ण करो, हे वसन्त, मुझ विवशा को अग्नि दान देकर अर्थात् अग्नि प्रज्वलित करके स्वामी के समीप पहुँचा दो अर्थात् अग्निप्रवेश कराओ॥ ३२॥

शशिना सह याति कौमदी, सह मेघेन तडित्प्रलीयते।
प्रमदाः पतिवर्त्मगा इति, प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि॥ ३३॥

अन्वयः—कौमुदी शशिना सह यति, तडित् मेघेन सह प्रलीयते; प्रमदाः पतिवर्त्मगाः इति विचेतनै अपि प्रतिपन्नम्।

कर्तव्यप्राप्त्यर्थः स्त्रीणामित्याह—

सं०—शशिनेति। कौमुदी चन्द्रिका शशिना सह याति। शशिन्यस्तमिते

स्वयं नश्यतीत्यर्थः। तडित्सौदामिनी मेघेन सह प्रलीयते प्रणश्यति। कर्तरि लट्। प्रमदाः स्त्रियः पतिवर्त्म गच्छन्तीति पतिवर्त्मगाः पतिमार्गानुगामिन्य इत्येतद्विचेतनैरल्पचेतनैः। अविवेकिभिरपीत्यर्थः। नाथस्तु "पृथग्जनैः" इति पपाठ। प्रतिपन्नं ज्ञातम्। "अलवणा यवागूः" "अनुदरा कन्या" इतिवदल्पत्वाभिप्रायेण विचेतनैरपीति निर्देशः। पतिवर्त्मगा इत्यत्र स्मृतिः—"आर्तार्ते मुदिते हृष्टा प्रोषिते मलिना कृशा। मृते म्रियेत या पत्यौ सा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता" इति ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—कौमुदी = ज्योत्स्ना, शशिना = चन्द्रमा के, सह = साथ, याति = जाती है (चन्द्र के अस्त होने पर स्वयं भी छिप जाती है) तडित् = विद्युत्, मेघेन सह = मेघ के साथ, प्रलीयते = विलीन हो जाती है (मेघ के नष्ट हो जाने पर तडित् भी नष्ट हो जाती है)। प्रमदाः = स्त्रियाँ, पतिवर्त्मगा = पति के मार्ग का अनुगमन करने वाली हैं, इति = ऐसा, विचेतनैरपि = अचेतनों द्वारा भी, प्रतिपन्नम् = जाना गया है।

सरलार्थः—चन्द्रिका चन्द्रेण सहैव अस्तं याति, मेघे विनष्टे जाते तत्सहगामिनी सौदामिनी अपि विनश्यति। इत्थमचेतनादिभिरपि 'स्त्रियः पतिमार्गानुगामिन्य' इति ज्ञातं भवति, पुनः सचेतनाऽहं कथं न करिष्यामीति भावः।

व्या० स० कोश—कौमुदी-कुमुदानां इयं कौमुदी "तस्येदम्" से अण्+ङीप्। "चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना" (अम०)। शशिना = शशः अस्याऽस्तीति शशी, तेन शशिना। "द्विजराजः शशधरो नक्षत्रेशः क्षपाकरः" (अम०)। 'सह' के योग में तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है। मेघेन = मेहति सिञ्चतीति मेघः तेन। √ मिह् + अच्। "अभ्रं मेघो वारिवाहः" (अम०)। पत्युः वर्त्म पतिवर्त्म तम् गच्छन्तीति पतिवर्त्मगाः। विचेतनैः = विगता चेतना येषां ते विचेतनाः तैः विचेतनैः। प्रतिपन्नम् = 'प्रतिपन्नमवसिताऽवगमे' (अम०)।

हिन्दी—चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर चन्द्रिका भी अस्त हो जाती है। मेघ के नष्ट होने के साथ ही विद्युत भी छिप जाती है। "स्त्रियाँ पति के मार्ग का अनुगमन करती हैं" यह बात तो इन अचेतन पदार्थों से भी ज्ञात होती है। (पुनः सचेतन में ऐसा क्यों न करूँगी)? ॥ ३३ ॥

अमुनैव कषायितस्तनी, सुभगेन प्रियगात्रभस्मना।
नवपल्लवसंस्तरे यथा रचयिष्यामि तनुं विभावसौ ॥ ३४ ॥

अन्वयः—अमुना सुभगेन प्रियगात्रभस्मना एव कषायितस्तनी नवपल्लवसंस्तरे यथा विभावसौ तनुं रचयिष्यामि।

सं०—अमुनैवेति। अमुना पुरोवर्तिना सुभगेन शोभनेन प्रियगात्रभस्मनैव। एवकारो मण्डनान्तरनिवृत्त्यर्थः। कषायितस्तनी रञ्जितस्तनी। "रागे क्वाथे कषायोऽस्त्री निर्यासे सौरभे रसे" इति वैजयन्ती। नवपल्लवसंस्तरे यथा नवपल्लवतल्प इव विभावसौ वह्नौ तनुं शरीरं रचयिष्यामि। निधास्यामीत्यर्थः।

शब्दार्थः-अमुना = सामने वर्तमान, सुभगेन = मनोहर, प्रियगात्रभस्मना एव = प्रिय के शरीर की भस्म से ही, कषायितस्तनी = स्तनों को रञ्जित करके, नवपल्लवसंस्तरे = नये पत्तों से निर्मित शय्या पर, यथा = जैसे, विभावसौ = अग्नि में, तनुम् = शरीर को, रचयिष्यामि = रखूंगी।

सरलार्थः—अनेनैव पुरोवर्तिना शोभनकामतनुभस्मना एव रञ्जितस्तनी नवपल्लवनिर्मितशय्यायामिव चिताग्नौ स्वदेहं निधास्यामि।

व्या० स० कोश—प्रियस्य गात्रं प्रियगात्रम् "गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः" (अम०) तस्य भस्म प्रियगात्रभस्म तेन। कषयितस्तनी = कषायः सञ्जातः ययोस्तौ कषायितौ, कषायितौ स्तनौ यस्याः सा कषायितस्तनी। "रागे क्वाथे कषायोऽस्त्री निर्यासे सौरभे रसे" (अम०)। नवपल्लवसंस्तरे = नवाश्च ते पल्लवाः नवपल्लवाः, तेषां संस्तरः नवपल्लवसंश्तरः तस्मिन् नवपल्लवसंस्तरे। 'पल्लवोऽस्त्री किसलयम्' (अम०)। विभावसु-अग्नि का एक नाम "सप्तर्चिर्दमुनाः शुक्रश्चित्रभानुर्विभावसु" (अमर०)।

हिन्दी—यह सामने गड़ी हुई प्रिय की शरीर की सुन्दर भस्म से ही अपने स्तनों को रञ्जित करके मैं नूतन पल्लवों से निर्मित शय्या की भाँति इस चिताग्नि में सो जाऊँगी ॥ ३४ ॥

कुसुमास्तरणे सहायतां बहुशः सौम्य गतस्त्वमावयोः।
कुरु सम्प्रति तावदाशु मे प्रणिपाताञ्जलियाचिताश्चिताम् ॥ ३५ ॥

अन्वयः—हे सौम्य त्वम् आवयोः बहुशः कुसुमास्तरणे सहयतां गतः असि, सम्प्रति प्रणिपाताऽञ्जलियाचितः सन् आशु मे चितां कुरु।

सं०—कुसुमेति। हे सौम्य साधो त्वमावयो रतिपञ्चबाणयोर्बहुशो बहुबारं कुसुमास्तरणे पुष्पशयने सहायतां गतः। सम्प्रति प्रणिपाताञ्जलिना याचितः। अञ्जलिपूर्वकं प्रार्थितः सन्नित्यर्थः। आशु मे चितां काष्ठचयं कुरु कुरुष्व। यथेह तथामुत्रोपकर्तव्यं मित्रेणेत्यर्थः।

शब्दार्थः—हे सौम्य = हे सज्जन, त्वम् = तुम, आवयोः = रति और कामदेव के, कुसुमास्तरणे = पुष्प शय्या पर, बहुशः = अनेक बार, सहायताम् = सहायता को, गतः=प्राप्त हुए हो। सम्प्रति = इस समय, पणिपाताञ्जलियाचितः = हाथ जोड़ नमस्कार पूर्वक प्रार्थना किये जाते हुए, आशु = शीघ्र ही, मे = मेरी, चिताम् = चिता को, कुरु = बनाओ।

सरलार्थः—हे सौम्य, त्वमावयोः सुरतसमये पुष्पशय्याद्युपकरणनिर्मितेन बहुशः सहायकोऽभूः तस्मादिदानीमहं कृताञ्जलिर्भूत्वा त्वां प्रार्थयामि यत् मम मरणाय चितां रचय।

व्या० स० कोश—कुसुमानाम् आस्तरणं कुसुमास्तरणम् तस्मिन्-कुसुमास्तरणे। प्रणिपातस्य अञ्जलिः प्रणिपाताञ्जलिः, तेन याचितः प्रणिपाताञ्जलियाचितः। आशु—"सत्वरं चपलं तूर्णमविलम्बितमाशु च" (अम०)।

हिन्दी—हे वसन्त, तुम हम दोनों के सुरतकाल में पुष्पशय्यादि प्रस्तुत कर अनेक बार सहायक बने हो, अतः आज भी तुम मेरी चिता को तैयार करो। मैं तुम्हें हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूँ ॥ ३५ ॥

तदनु ज्वलनं मदर्पितं त्वरयेर्दक्षिणवातवीजनैः।
विदितं खलु यथा स्मरः क्षणमप्युत्सहते न मां विना ॥ ३६ ॥

अन्वयः—तदनु मदर्पितं ज्वलनं दक्षिणवातवीजनैः त्वरयेः। ते विदितं खलु, यथा स्मरः मां विना क्षणम् अपि न उत्सहते।

सं०—तदन्विति। तच्चिताकरणमनु अनन्तरं मय्यर्पितं मदर्पितं ज्वलन्तमग्निं दक्षिणवातवीजनैर्मलयमारुतसञ्चारणैस्त्वरयेः। त्वरितं ज्वलयेत्यर्थः। त्वराहेतुमाह—ते तव विदितं खलु। "मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च" इति वर्तमाने क्तः।

तद्योगात्कर्तरि षष्ठी। यथा येन प्रकारेण स्मरो मां विना क्षणमपि नोत्सहते न हृष्यति। तथा त्वया ज्ञातमेवेत्यर्थः।

शब्दार्थः—तदनु = उसके बाद, मदर्पितम् = मेरे लिए दी गयी, ज्वलनम् = अग्नि को, दक्षिणवातवीजनैः = दक्षिण दिशा की वायु के संचालन से, त्वरयेः = शीघ्र (अग्नि प्रज्वलित) करो। क्योंकि, ते = तुम्हें, विदित खलु = ज्ञात ही है, येन = जिससे, स्मरः = काम, मां विना = मेरे विना, क्षणमपि = क्षणभर भी, न उत्साहते = प्रसन्न नहीं रहता है।

सरलार्थः—हे साधो ! चिताकरणाऽनन्तरं त्वं मदर्पितमग्नि शीघ्रमैव मलयपवनसंचारणैः प्रज्वलय। यतो हि मदनः मां विना क्षणमात्रमपि न हृष्यतीति।

व्या० स० कोश—तदनु=तस्मात् अनु तदनु। मदर्पितम् = मयि अर्पितः मदर्पितः, तम्। दक्षिणस्य वातः दक्षिणवातः तेन वीजनानि दक्षिणवातवीजनानि तैः दक्षिणवातवीजनैः। त्वरयेः = √ञित्वरा सम्भ्रमे + लिङ्। क्षणम्—'निर्व्यापारस्थितौ कालविशेषोत्सवयोः क्षणः'' (अम०)। यहाँ ''कालाऽध्वनोरत्यन्तसंयोगे'' इससे द्वितीया हुई है।

हिन्दी—हे वसन्त, उसके बाद मुझे दी हुई अग्नि को तुम दक्षिण पवन से शीघ्र प्रज्वलित करो; (क्योंकि) तुम जानते ही हो कि काम मेरे बिना क्षणमात्र भी नहीं रह सकता ॥ ३६ ॥

इति चाऽपि विधाय दीयतां सलिलस्याञ्जलिरेक एव नौ।
अविभज्य परत्र तं मया सहितः पास्यति ते स बान्धवः ॥ ३७ ॥

अन्वयः—अपि च, इति विधाय नौ एक एव सलिलस्य अञ्जलिः दीयताम्; तं स ते वान्धवः परत्र मया सहितः अविभज्य पास्यति।

सं०—इतीति। अपि च इत्येवं विधाय कृत्वा नौ आवाभ्याम् एक एव सलिलस्य अञ्जलिः दीयताम्। तम् अञ्जलिं स ते बान्धवः सखा स्मरः परत्र परलोके मया सहितः अविभज्य पास्यति।

शब्दार्थः—अपि च = और भो, इति = इस प्रकार, विधाय = करके, नौ = हम दोनों में से, एक एव = एक ही, सलिलस्य = जल की, अञ्जलिः = तर्पण, दीयताम् = दो। तम् = उसको, ते = तुम्हारा, बान्धवः = मित्र काम, परत्र =

परलोक में, मया = मेरे, सहितः = साथ, अविभज्य = विना विभाग किये ही, पाष्यति = पान करेगा।

सरलार्थः—इत्थं कृत्वा मम मरणानन्तरं आवाभ्यां प्रेततर्पणजलाञ्जलिरपि एकमेव दातव्या, येन परलोकगतः स ते बन्धुस्तव मयैव सह तमविभज्यमानं पानं करिष्यति।

व्या० स० कोश नौ = यहाँ "युष्मदस्मदोः षष्ठी चतुर्थी द्वितीयास्थयोर्वान्नावौ" सूत्र से 'नौ' आदेश हुआ है। "सलिलं कमलं जलम्" (अम०)। अञ्जलिः — अञ्जलिस्तु पुमान् हस्तसम्पुटे कुडवेऽपि च" (मेदिनी)। परत्र = परस्मिन्निति परत्र, 'सप्तम्यास्त्रल्' से त्रल्।

हिन्दी—हे वसन्त, तुम इस प्रकार कार्य सम्पन्न करके हम दोनों के लिए एक ही जलाञ्जलि से तर्पण भी करना, जिससे तुम्हारा प्रिय बन्धु मदन परलोक में मेरे साथ ही उसका पान कर सके ॥ ३७ ॥

परलोकविधौ च माधव ! स्मरमुद्दिश्य विलोलपल्लवाः।
निवपेः सहकारमञ्जरीः प्रियचूतप्रसवो हि ते सखा ॥ ३८ ॥

अन्वयः—हे माधव, परलोकविधौ स्मरम् उद्दिश्य विलोलपल्लवाः सहकारमञ्जरीः निवपेः, हि ते सखा प्रियचूतप्रसवः अस्ति।

सं०—परलोकेति। किञ्च। हे माधव वसन्त। परलोकविधौ पिण्डोदकादिकर्मणि स्मरमुद्दिश्य विलोलाः पल्लवा यासु ताः सहकारमञ्जरीश्चूतवल्लरीर्निवपेर्देहि। हि यस्मात् कारणात्ते सखा स्मरः प्रियाश्चूतप्रसवा यस्य स तथोक्तः।

शब्दार्थः—हे माधव = हे वसन्त, परलोकविधौ = परलोक की विधि अर्थात् और्ध्वदेहिक कर्म में, स्मरम् = कामदेव को, उद्दिश्य = उद्देश्य करके, विलोलपल्लवाः = चञ्चल किसलय, सहकारमञ्जरी = आम्रमञ्जरी, निवपेः = दो, हि = क्योंकि, ते = तुम्हारा, सखा = मित्र, प्रियचूतप्रसवः = आम्रमञ्जरी को चाहने वाला (अस्ति = है)।

सरलार्थः—हे वसन्त, त्वमावयोरौर्ध्वदेहिकप्रेतकर्मणि कामदेवमुद्दिश्य चञ्चलकिसलयान् आम्रमञ्जरीश्च देहि, यतो हि स ते बन्धु सहकारमञ्जरी प्रिय अस्तीति। जीवितकाले यस्य यद्वस्तु प्रियं भवति तद्वस्तु एव परत्र तस्मै प्रदेयमिति भावः।

व्या० सं० कोश—परलोकविधौ = परश्चासौ लोकः परलोकः, तस्य विधिः परलोकविधिस्तस्मिन् परलोकविधौ। "विधिर्विधाने दैवे च" (अम०)। विलोलपल्लवाः = विशेषेण लोलाः विलोलाः "कम्पं चलं लोलं चलाचलम्" (अम०)। विलोलाः पल्लवाः यासु ताः विलोलपल्लवाः ताः। 'पल्लवोऽस्त्रीकिसलयम्" (अम०)। सहकारमञ्जरीः—"आम्रश्चूतो रसालोऽसौ सहकारोऽतिसौरभः" (अम०)।

हिन्दी—हे वसन्त, कामदेव का और्ध्वदेहिक कार्य करते समय श्राद्ध में चञ्चल पल्लवों वाली आम्रञ्जरी अवश्य प्रदान करना, क्योंकि तुम्हारे मित्र काम को आम्रमञ्जरी अतिप्रिय थी।

विशेष—सहकार—आम का वृक्ष—'क इदानीं सहकारमन्तरेण पल्लविता मतिमुक्तलतां सहते (श० ३)॥ ३८॥

इति देहविमुक्तये स्थितां रतिमाकाशभवा सरस्वती।
शफरीं ह्रदशोषविक्लवां प्रथमा वृष्टिरिवान्वकम्पयत्॥ ३९॥

अन्वयः—इति देहविमुक्ते स्थितां रतिम् आकाशभवा सरस्वती ह्रदशोषविक्लवां शफरीं प्रथमा वृष्टिः इव अन्वकम्पयत्।

सं०—इतीति। इति देहस्य विमुक्तये शरीरस्य विसर्गाय स्थिताम्। कृतनिश्चयमिति यावत्। रतिमाकाशभवा सरस्वत्यशरीरा वाग्घ्रदशोषविक्लवां ह्रदस्य जलाधारस्य शोषेण विक्लवां शफरीं प्रोष्ठीम्। "प्रोष्ठी तु सफरी द्वयोः" इत्यमरः। प्रथमा वृष्टिर्वर्षमिव अन्वकम्पयदनुकम्पितवती। सदयमुवाचेत्यर्थः। "कृपा दयानुकम्पा स्यात्" इत्यमरः।

शब्दार्थः—इति = इस प्रकार, देहविमुक्तये = शरीरत्याग के लिए, स्थिताम् = उद्यत्, रतिम् = कामप्रिया पर, आकाशभवा = आकाश में उत्पन्न, सरस्वती = वाणी अर्थात् आकाशवाणी, 'ह्रदशोषविक्लवाम् = तालाब के सूख जाने से व्याकुल, सफरीम् = मछली को, प्रथमा = ग्रीष्मावसान पर पहले पहल हुई, वृष्टिः इव = वर्षा के समान, अन्वकम्पयत् = दयावती हुई।

सरलार्थः—यथा शरःशोषेण व्याकुलां मत्सीं ग्रीष्मावसाने प्रथमा वृष्टिः पयार्द्रा भवति तथैव शरीरत्यागाय समुद्यतां कामभार्या रतिं प्रति आकाशवाणी अनुकम्पितवती, सदयमुवाचेत्यर्थः।

व्या० स० कोश—देहविमुक्तये = देहस्य विमुक्तिः देहविमुक्तिः तस्यै देहविमुक्तये। "कायो देहः क्लीबपुंसो स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनूः" (अम०)। सरस्वती-"ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग् वाणी सरस्वती" (अम०)। ह्रदशोषविक्लवाम् = ह्रदस्य शोषः ह्रदशोषः, तेन विक्लवाः ह्रदशोषविक्लवा ताम्। 'तत्रागाधजलोह्रदः' (अम०)।

हिन्दी—जिस प्रकार ग्रीष्मकाल के बाद प्रथम वर्षा की बूंद सूखे तालाब को मछली में प्राण संचारित कर देती है उसी प्रकार, मरने के लिए उद्यत रति के ऊपर आकाशवाणी ने कृपा की ॥ ३९ ॥

कुसुमायुधपत्नि ! दुर्लभस्तव भर्ता न चिराद्भविष्यति।
शृणु येन स कर्मणा गतः, शलभत्वं हरलोचनार्चिषि ॥ ४० ॥

अन्वयः—हे कुसुमायुधपत्नि ! तव भर्ता चिरात् दुर्लभः न भविष्यति। शृणु येन कर्मणा सः हरलोचनार्चिषि शलभत्वं गतः।

सं०—कुसुमेति। हे कुसुमायुधपत्नि रते। तव भर्ता चिराच्चिरं दुर्लभो न भविष्यति। किन्त्वचिरमेव सुलभो भविष्यतीत्यर्थः। किञ्च शृणु। तत्कर्मेति शेषः। येन कर्मणा स ते भर्ता हरलोचनस्यार्चिर्ज्वाला। "ज्वाला भासो न पुंस्यर्चिः" इत्यमरः। तस्मिन् शलभत्वं गतः। "समौ पतङ्गशलभौ" इत्यमरः ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—हे कुसुमायुधपत्नि = हे रति, तव तुम्हारा, भर्ता = पति कामदेव, चिरात् = बहुत समय तक, दुर्लभः = दुर्लभ, न भविष्यति = न होगा, शृणु = सुनो, येन कर्मणा = जिस क्रिया से, स=वह तुम्हारा पति, हरलोचनार्चिषि = भगवान् शङ्कर की नेत्र ज्वाला में, शलभत्वं गतः = पतङ्गता को प्राप्त हुआ है।

सरलार्थः—हे रति, तव पतिः अचिरमेव प्राप्तो भविष्यति यस्मात् कारणात् स ते भर्ता शिवकोपाग्निना भस्मीभूतः तत् कारणं शृणु।

व्या० स० कोश—कुसुमायुधपत्नि = कुसुमानि आयुधं यस्य स कुसुमायुधः तस्य पत्नी तत्सम्बुद्धो हे कुसुमायुधपत्नि ! हरलोचनार्चिषि = हरतीति हरः तस्य लोचनं हरलोचनं, तस्य अर्चिः हरलोचनार्चिः तस्मिन्। "ज्वाला भासो न पुंस्यर्चिः" (अम०)। शलभत्वम्=शलभस्य भावः शलभत्वं तत्। "समौ पतङ्गशलभौ" (अम०)।

हिन्दी—हे रति, तुम्हारा अपने पति से शीघ्र ही मिलन होगा। जिस कर्मफल के कारण तुम्हारा पति काम शिव की कोपाग्नि में भस्मीभूत हुआ है, उसे सुनो ॥ ४० ॥

विशेष—शलभत्वम्–"कौरव्यवंशदावेऽस्मिन् क एष शलभायते" (वेणी० १।१९)।

अभिलाषमुदीरितेन्द्रियः　　स्वसुतायामकरोत्प्रजापतिः ।
अथ तेन निगृह्य विक्रियामभिशप्तः फलमेतदन्वभूत् ॥ ४१ ॥

अन्वयः—उदीरितेन्द्रियः प्रजापतिः स्वसुतायाम् अभिलाषम् अकरोत्। अथ तेन विक्रियां निगृह्य अभिशप्तः सन् एतत् फलम् अन्वभूत्।

तदेव कर्मोपचष्टे—

सं०—अभिलाषमिति। उदीरितेन्द्रियः प्रेरितेन्द्रियः। स्मरेणेति शेषः। प्रजापतिर्ब्रह्मा स्वसुतायां सरस्वत्यामभिलाषमनुरागमकरोत्। अथ तेन प्रजापतिना विक्रियाम् इन्द्रियविकारं निगृह्य निरुध्याभिशप्तः सन्। एतत् फलं दाहात्मकं स्वकर्मफलमन्वभूत्।

शब्दार्थः—उदीरितेन्द्रियः = चंचल इन्द्रिय वाले, प्रजापतिः = ब्रह्मा ने, स्वसुतायाम्=अपनी पुत्री सरस्वती के प्रति, (जिस काम के कारण) अभिलाषमकरोत् = उपभोग की इच्छा की थी। अथ = अनन्तर, तेन = ब्रह्मा के द्वारा, विक्रियाम् = इन्द्रिय विकार को, निगृह्य = नियन्त्रित करके, अभिशप्तः सन् = अभिशाप को प्राप्त करते हुए (कामदेव ने), एतत् = इस हरकोपानल दाहरूप, फलम् = परिणाम को, अन्वभूत = प्राप्त किया था।

सरलार्थः—कामसंक्षोभितेन्द्रियो ब्रह्मा आत्मदुहितां सरस्वतीं प्रति साभिलाषमभूत्। तदनन्तरं केनापि प्रकारेणेन्द्रियं निरुद्धय कामं शप्तवान् यत् त्वं हरकोपाग्निना भस्मीभवेति, तस्येवेदं फलमिति भावः।

व्या० स० कोश—उदीरितेन्द्रियः= उदीरितं इन्द्रियं यस्य स उदीरितेद्रियः। प्रजापतिः = प्रजायन्त इति प्रजाः, प्रजानां पति प्रजापतिः। अन्वभूत = "अनु" √भू + लुङ्।

हिन्दी—प्राचीन समय में ब्रह्मा अपनी पुत्री सरस्वती के प्रति इसी कामदेव

के कारण मोहाशक्त हो गये थे। तब ब्रह्मा जी ने अपने इन्द्रिय विकार को रोक कर कामदेव को शाप दिया, जिसका यह हरकोपानलदाहरूप फल वह भोग रहा है॥ ४१॥

परिणेष्यति पार्वतीं यदा तपसा तत्प्रवणीकृतो हरः।
उपलब्धसुखस्तदा स्मरं, वपुषा स्वेन नियोजयिष्यति॥ ४२॥
इति चाह स धर्मयाचितः, स्मरशापाऽवधिदां सरस्वतीम्।
अशनेरमृतस्य चोभयोर्वशिनश्चाऽम्बुधराश्च योनयः॥ ४३॥

अन्वयः—धर्मयाचितः सः "तपसा तत्प्रवणीकृतः हरः यदा पार्वतीं परिणेष्यति, तदा उपलब्धसुखः सन् स्मरं स्वेन वपुषा नियोजयिष्यति" इति स्मरशापाऽवधिदां सरस्वतीं च आह। वशिनः अम्बुधराश्च अशनेः अमृतस्य च उभयोः योनयः भवन्ति।

शापावधिरपि तेनैवोक्त इत्याह श्लोकद्वयेन—

सं०—परिणेष्यतीति। इतीति च। धर्मेण धर्माख्यप्रजापतिना याचितः प्रार्थितः स भगवान् ब्रह्मा। तपसा कारणेन तस्यां पार्वत्यां प्रवणीकृतः अभिमुखीकृयो हरः शिवो यदा पार्वतीं परिणेष्यत्युद्वक्ष्यति तदोपलब्धसुखः प्राप्तानन्द, सन्। स्मरं कामं स्वेन वपुषा नियोजयिष्यति सङ्गमयिष्यति। इत्येवं स्मरशापस्यावधिदाम् अवसानदायिनीं सरस्वतीं। वाचं चाह। एवं शापावधिमप्युक्तवानित्यर्थः। ननु तथा क्रुद्धस्य कथमीदृशो शान्तिरत आह—वशिनो जितेन्द्रियाश्चाम्बुधराश्चाशनेरमृतस्य चेत्युभयोर्योनयः प्रभवाः। वशिपक्षेऽशन्यमृतशब्दो कोपप्रसादपरौ। अन्यत्र वैद्युताग्न्युदकपरौ। युग्मकम्॥ ४२-४३॥

शब्दार्थः—धर्मयाचितः = धर्म के द्वारा प्रार्थित, स = उन ब्रह्मा ने, तपसा = तपस्या के द्वारा, तत्प्रवणीकृतः = पार्वती की ओर अभिमुख किये गये, हरः = शिव, यदा = जिस समय, पार्वतीम् = पार्वती के साथ, परिणेष्यति = विवाह करेंगे, तदा = उस समय, उपलब्धसुखः सन् = आनन्दित होते हुए, स्मरम् = कामदेव को, स्वेन = अपने, वपुषा = शरीर के साथ, नियोजयिष्यति = संयोजित करेंगे, इति = इस प्रकार, स्मरशापावधिदाम = कामदेव के शाप के अवसान को सूचित करने वाली, सरस्वतीम् = वाणी को, आह = कहा। वशिनः = जितेन्द्रिय पुरुष और अम्बुधराः = मेघ, अशनेः = वज्र का (क्रोध), अमृतस्य च = और

अमृत का (प्रसाद), उभयोः = दोनों का, योनयः = उत्पत्ति स्थान अर्थात् निवास (भवन्ति=होता)।

सरलार्थ—सृष्टिरक्षार्थं यदा धर्मेण प्रार्थना कृता, तदा प्रसन्नः सन् ब्रह्मा अवोचत्—यदा तपसाऽभिमुखः शिव पार्वतीं परिणेष्यति तदा प्राप्तानन्दः सन् कामं स्वकीयेन शरीरेण संयोजयिष्यतीति। इत्थं स्मरस्य शापमुक्तिर्भविष्यति। यतो हि संयमिनो पुरुषाः मेघाश्च वज्रस्य (क्रोधस्य), अमृतस्य (प्रसादस्य) च उभयोः प्रभावाः भवन्ति।

व्या० स० कोश—तत्प्रवणीकृतः, अप्रवणः प्रवणः यथा सम्पद्यते तथा कृतः प्रवणीकृतः, तस्यां प्रवणीकृतः, तत्प्रवणीकृतः। उपलब्धसुखः=उपलब्धं सुखं येन स उपलब्धसुखः 'शर्मसात सुखानि च' (अम०)। स्मरशापावधिकां—स्मरस्य शापः स्मरशापः, अवधिं ददाति इति अवधिदा, स्मरशापस्य अवधिदा ताम्। अम्बुधराः = धरन्तीति धराः अम्बूनां धराः अम्बुधराः। "वारिदोऽम्बुभृत्" (अम०)। योनयः–यहाँ योनि शब्द लक्षण से उत्पत्त्यर्थक है।

अलङ्कार–यहाँ पर दीपक अलङ्कार है क्योंकि संयमी पुरुष का दृष्टान्त उपस्थित करने के लिये अप्रकृत अम्बुधरः वृत्तान्त को ग्रहण किया गया है। दीपक का लक्षण है—

सकृद्वृत्तिस्तुधर्मस्य प्रकृताप्रकृतात्मनाम्।
सैवक्रियासु वह्वीषु कारकस्येति दीपकम्॥

इसके अतिरिक्त एक ही आश्रय शिव में क्रोध और प्रसन्नता—दोनों का समन्वय बताने के लिए अम्बुधर में वज्र और पीयूष का उदाहरण दिया गया है अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास भी है।

हिन्दी—(सृष्टि की रक्षा के लिए) धर्म के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर ब्रह्मा ने "जब शिव पार्वती की तपस्या से सन्तुष्ट होकर उसके साथ विवाह करालेंगे उस समय आनन्दित होते हुये वे कामदेव को अपने शरीर से संयुक्त करेंगे" ऐसी कामदेव को शाप से छुड़ाने वाली वाणी कही। (अत्यन्त क्रुद्ध शिव में पुनः प्रसन्नता कैसे सम्भव है—इसके समाधान के लिये दृष्टान्त देते हैं कि) जिस प्रकार मेघों में जल एवं विद्युत् दोनों का वास रहता है उसी प्रकार संयमी पुरुषों में कोप व प्रसाद दोनों एक साथ रहते हैं॥ ४२-४३॥

तदिदं परिरक्ष शोभने ! भवितव्यप्रियसङ्गमं वपुः ।
रविपीतजला तपात्यये पुनरोघेन हि युज्यते नदी ॥ ४४ ॥

अन्वयः—हे शोभने ! तत् भवितव्यप्रियसङ्गमम् इदं वपुः परिरक्ष । हि रविपीतजला नदी तपात्यये पुनः ओघेन युज्यते ।

सं०—तदिति । हे शोभने तत्तस्मात् कारणाद्भवितव्यो भविष्यम् प्रियसङ्गमो यस्य तत्तथोक्ताम् इदं वपुः परिरक्ष । तथाहि । रविपीतजला नदी तपात्यये प्रवृषि । "प्रावृट् तपात्यये" इति हलायुधः । पुनरोघेन प्रवाहेण युज्यते सङ्गच्छते हि ॥ ४४ ॥

शब्दार्थः—हे शोभने=हे सुन्दरि, तत्=उस कारण से, भवितव्यप्रियसङ्गमम्=भविष्य में जिसका प्रिय से समागम होगा ऐसे, इदम् = यह, वपुः = शरीर को, परिरक्ष = रक्षा करो । हि = क्योंकि, रविपीतजला = सूर्य द्वारा जिसका जल पी लिया गया है ऐसी अर्थात् सूखी, सरित् = नदी, तपात्यये—ग्रीष्म के बीत जाने पर अर्थात् वर्षा काल में, पुनः = फिर, ओघेन = प्रवाह से, युज्यते युक्त हो जाती है ।

सरलार्थः—हे सुन्दरि, तव शरीरस्य प्रियसमागम अवश्यम्भावी एवाऽस्ति अतस्त्वमेतत् परिरक्ष । सहसा देहविमुक्तये मा गच्छ । यतो हि ग्रीष्मकाले सूर्यपीतजला अत एव शुष्काऽपि सरित् ग्रीष्मान्तो पुनरपि मेघजनितेन जलप्रवाहेण संयुक्ता भवतीति ।

व्या० स०, कोश-भवितुं योग्यः भवितव्यः (√भू + तव्यत्), प्रियेण सङ्गमः प्रियसङ्गमः, भवितव्यः प्रियसङ्गमो यस्य तत् भवितव्यप्रियसङ्गमम्, तत् । पीतं जलं यस्याः सा पीतजला, रविणा पीतजला रविपीतजला । तपस्य अत्ययः (ध्वंसः) यस्मिन् स तपात्ययः तस्मिन् तपात्यये । "प्रावृट् तपात्यये" (हलायुधः) ।

अलङ्कार—यहाँ सादृश्य निमित्तक अर्थान्तरन्यास अलंकार है ।

हिन्दी—हे सुन्दरी, तुम्हारा प्रिय समागम अवश्यम्भावी है, अतः तुम अपने इस शरीर की रक्षा करो (अर्थात् पुनः प्रियसमागम से वञ्चित मत होओ) क्योंकि जो नदी ग्रीष्म काल में सूर्य की किरणों से शोषित होकर जलहीन हो जाती है, वही पुनः वर्षा ऋतु आने पर जल से पूर्ण हो जाती है ।

इत्थं रतेः किमपि भूतमदृश्यरूपं
मन्दीचकार मरणव्यवसायबुद्धिम् ।
तत्प्रत्ययाच्च कुसुमायुधबन्धुरे-
नामाश्वासयत्सुचरिताऽर्थपदैर्वचोभिः ॥ ४५ ॥

अन्वयः—इत्थम् अदृश्यरूपं किमपि भूतं रतेः मरणव्यवसायबुद्धि मन्दीचकार। अथ कुसुमायुधबन्धुश्च तत्प्रत्ययात् एनाम् सुचरिताऽर्थपदैः वचोभिः आश्वासयत्।

सं०—इत्थमिति। इत्थमनेन प्रकारेण अदृश्यरूपं किमपि भूतं कश्चित्प्राणी। "युक्ते क्ष्मादावृते भूतं प्राण्यतीते समे त्रिषु" इत्यमरः। रतेर्मदनदाराणां मरणव्यवसायबुद्धि मरणोद्योगबुद्धि मन्दीचकार। निवारयामासेत्यर्थः। 'मूढाल्पापटुनिर्भाग्या मन्दाः' इत्यमरः। अथ कुसुमायुधबन्धुर्वसन्तश्च तत्प्रत्ययात्तस्मिन् भूते विश्वासात्। 'प्रत्ययोऽधीनशपथज्ञानविश्वासहेतुषु' इत्यमरः। एनां रतिं सुष्ठु चरितार्थानि पदानि येषां तैर्वचोभिर्वाक्यैः आश्वासयत्। सर्वथा ते देवताप्रसादात् प्रियसङ्गमो भविष्यतीत्यादिवचनैरस्या दुःखमपाचकारेत्यर्थः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थः—इत्थम् = इस प्रकार, अदृश्यरूपम् = जिसका स्वरूप नहीं दिखाई पड़ रहा था ऐसे, किमपि भूतम् = किसी प्राणी ने, अर्थात् दैव ने, रतेः = कामपत्नी के, मरणव्यवसायबुद्धिम् = मरण के लिए कृतसंकल्प मति को, मन्दीचकार = शिथिल कर दिया अर्थात् निवृत्त कर दिया। अनन्तरं = तत्पश्चात्, कुसुमायुधबन्धुः = काम का मित्र वसन्त भी, तत्प्रत्ययात् = उसी अदृश्य दैव पर विश्वास करके, एनाम् = रति को, सुचरितार्थपदैः वचोभिः = युक्तिपूर्ण वचनों द्वारा, आश्वासयत् = आश्वासन देने लगा।

सरलार्थः—इत्थं कश्चिददृश्यरूपो दैवविशेषः कामपत्न्याः देहत्यागाय कृतनिश्चयं मनः निवर्तयामास। दैवविश्वासादेव माधवोऽपि युक्तिपूर्णवचोभिस्तामाश्वासयत्।

व्या० स० कोश—द्रष्टुं शक्यं दृश्यं, न दृश्यं अदृश्यं तत् रूपं यस्य तत् अदृश्यरूपम्। मरणस्य व्यवसायः मरणव्यवसायः तस्मिन् बुद्धिः मरणव्यवसायबुद्धि : ताम्। "बुद्धिर्मनीषा धिषणा धीः प्रज्ञा शेमुषी मतिः" (अम०)।

तत्प्रत्ययात् = तस्मिन् (भूते) प्रत्ययः तत्प्रत्ययः तस्मात्। चरितः अर्थः येषु तानि चरितार्थानि, सुष्ठु चरितार्थानि सुचरितार्थानि तानि पदानि येषां तानि सुचरितार्थपदानि तैः सुचरितार्थपदैः।

छन्द – इसमें वसन्ततिलका छन्द है। इसका लक्षण है—

"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः"

हिन्दी – इस प्रकार किसी अदृश्य दैव ने कामपत्नी रति को देहत्याग के निश्चय से निवृत्त कर दिया और उसी आकाशवाणी पर विश्वास करते हुए वसन्त भी अनेक युक्तिपूर्ण वचनों से रति को आश्वासन देने लगा॥ ४१॥

अथ मदनवधूरुपप्लवान्तं व्यसनकृशा परिपालयाम्बभूव।
शशिन इव दिवातनस्य लेखा किरणपरिक्षयधूसरा प्रदोषम्॥ ४६॥

अन्वयः—अथ व्यसनकृशा मदनवधूः उपप्लवान्तं किरणपरिक्षयधूसरा दिवातनस्य शशिनः लेखा प्रदोषम् इव परिपालयाम्बभूव।

सं०—अथेति। अथ अनन्तरं व्यसनेन दुःखेन कृशा मदनवधूरतिरुपप्लवान्तं विपदवधिं किरणपरिक्षयेण धूसरा मलिना दिवातनस्य दिनभवस्य। "सायं चिरम्–" इत्यादिना ट्युप्रत्ययः। शशिनश्चन्द्रस्य लेखा प्रदोषं रात्रिमिव परिपालयाम्बभूव प्रतीक्षाञ्चक्रे। पुष्पिताग्रावृत्तम्—"अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा" इति लक्षणात्॥ ४६॥

इति श्रीमन्महामहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथसूरिविरचितया
संजीविनीव्याख्यया समेतः महाकविकालिदासकृतौ
कुमारसम्भवे महाकाव्ये रतिविलापो नाम
चतुर्थः सर्गः।

शब्दार्थः—अथ = अनन्तर, व्यसनकृशा = दुःख से दुर्बल, मदनवधूः = कामपत्नी, उपप्लवान्तम् = विपत्ति की अवधि को, अर्थात् काम के शापान्त समय को, किरणपरिक्षयधूसरा = किरणों के गिरने से मलिन, दिवातनस्य = दिन में दृष्ट, शशिनः = चन्द्रमा की, लेखा = कला, प्रदोषं इव = जैसे सन्ध्या समय को, (उसी प्रकार) परिपालयाम्बभूव = प्रतीक्षा करने लगी।

सरलार्थः—अनन्तरं दुःखक्षामा सा मदनवधू रतिः कामशापावसानसमयं प्रतीक्षां चक्रे। यथा दिवावर्तमानस्य चन्द्रस्य रश्मिपरिक्षयेण धूसरा लेखा स्वतेजोवृद्धिकरं सन्ध्यां प्रतिपालयतीति।

व्या० स० कोश—व्यसनेन कृशा व्यसनकृशा। उपप्लवस्य अन्तः उपप्लवान्तः, तम्। किरणानां परिक्षयः किरणपरिक्षयः, तेन धूसरा किरणपरिक्षयधूसरा। दिवातनस्य = दिवा भवः दिवातनः, तस्य दिवातनस्य।

छन्द—पुष्पिताग्रा—"अयुजिनयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा"।

हिन्दी—तदनन्तर दुःख के कारण कृश शरीरवाली कामप्रिया रति मदन के अभिशाप के अन्तिम समय की प्रतीक्षा करने लगी। जैसे दिन में किरणों के प्रक्षेप से धूसर अर्थात् तेजोहीन चन्द्रमा की कला सन्ध्या समय की प्रतीक्षा करती है॥ ४६॥

विशेष—'व्यसन' का अर्थ दुःख, आपत्ति, दुर्भाग्य है। द्रष्टव्य—"अज्ञातभर्तृव्यसना मुहूर्तं कृतोपकारेव रतिर्बभूव" (कु० ३।७३)। "स सुहृद् व्यसने यस्मात्" (पञ्च० १।२३७)। 'परिक्षय'—नाश, ह्रास—परिक्षयोऽपि अधिकतरं रमणीयः (मृच्छ० १)॥ ४६॥

इति 'बकुला' हिन्दी व्याख्या सहित चतुर्थ सर्ग समाप्त।

Bhawan's Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya Bhartiya Vidya
608

चतुर्थसर्गस्य श्लोकानुक्रमणिका

	श्लोक		श्लोक
अथ तैः परि	२५	कृतवानसि	७
अथ मदनवधू	४६	क्रियातो कथं	२२
अथ मोहपरा	१	क्वनु ते हृदयङ्ग	२४
अथ सा	४	क्व नु माम्	९
अभिलाषम्	४१	गत एव न ते	३०
अमुना ननु	२९	तमवेक्ष्य	२६
अमुनैव कषा	३४	तदनु ज्वलनं	३६
अयि जीवित	३	तदिदं क्रिय	३२
अयि सम्प्रति	२८	तदिदं परिरक्ष	४४
अलिपङ्क्तिः	१५	नयना	१२
अवगम्य	१३	परलोकनव	१०
अवधानपरे	२	परलोकविधौ	३८
अहमेत्य	२०	परिणेष्यति	४२
इति चाऽपि	३७	प्रतिपद्य	१६
इति चाह स	४३	मदनेन विना	२१
इति चैनमुवा	२७	रचितं रतिपंडित	१८
इति देहविमु	३९	रजनीतिमिर	११
इति द्विजातौ	७४	विधिना कृतम्	३१
इत्थं रतेः	४५	विबुधैरसि	१९
उपमानमभूद	५	शशिना सह	३३
ऋजुतां नयतः	२३	शिरसा प्रणि	१७
कुसुमायुधपति	४०	शिलाशयाम्	२५
कुसुमास्तरेण	३५	स्मारसि स्मर	८

परीक्षोपयोगी पुस्तकें

१ **चौखम्भा नवीन हिन्दी निबन्ध** । डॉ० राजकिशोर त्रिपाठी १०-००

२ **ऋग्वेदभाष्य भूमिका** । सायणाचार्य विरचित । हिन्दी व्याख्यो.पेता । व्याख्याकार डॉ० वी० के० वर्मा २५-००

३ **सामान्य संस्कृत व्याकरण** । (रचना तथा अनुवाद) सम्पादक- डॉ० रामजी उपाध्याय तथा डॉ० मनोरमा तिवारी २०-००

४ **तर्कसंग्रह** । पदकृत्य संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित । सम्पादक- श्री चन्द्रधर शुक्ल ३-००

५ **किरातार्जुनीयमहाकाव्यम्** । महाकवि भारवि विरचित । संस्कृत-हिन्दी-व्याख्याकार-आचार्य शेषराज शर्मा । ३-६ सर्ग २०-००
'चन्द्रकला' हिन्दी सम्पूर्ण ६०-०० प्रत्येक सर्ग ५-००

६ **अर्थसंग्रह** । हिन्दी-व्याख्याकार-डॉ० वाचस्पति उपाध्याय ३५-००

७ **नैषधचरित** । महाकवि हर्ष कृत, मल्लिनाथ कृत टीका तथा डॉ० सुरेन्द्रदेवशास्त्री हिन्दी व्याख्या एवं नोट्स आदि युक्त, प्रथम सर्ग १५-००

८ **नैषधचरित** । 'नारायणी' संस्कृत 'प्रकाश' हिन्दी व्याख्या सहित, व्याख्याकार-वायुनन्दन पाण्डेय तथा कपिलदेवगिरि २-४ सर्ग ४५-००

९ **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** । भट्टोजिदीक्षित विरचित । पाणिनीय सूत्रवृत्ति, पाणिनीय शिक्षा, लिङ्गानुशासन सहित तथा अकारादि क्रम से सम्पूर्ण सूत्रों की सूची सहित, सम्पादक—स्वामी कृष्णवल्लभाचार्यजी ४०-००

कुमारसंभवम् । हिन्दीव्याख्यासहित प्रति सर्ग मूल्य
प्रभुनाथकृत प्रथम सर्ग १०-०० प्रभुनाथकृत द्वितीय सर्ग १०-००
प्रभुनाथकृत तृतीय सर्ग १०-०० कन्हैयालालकृत चतुर्थ ,, १०-००
कन्हैयालालकृत पञ्चम ,, १०-०० ,, १-५ सर्ग ५०-००
संजीवनीशिशुहितैषिणी टीका सम्पूर्ण १५०-००
,, १-८ सर्ग ९-१७ हिन्दी टीका ७५-००

प्राप्तिस्थान-**चौखम्भा ओरियन्टालिया**, पो. बा. नं. १०३२, वाराणसी